Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सास्कृतिकी

डॉ० शिवानन्द नौटियाल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रसिद्ध साहित्यकार
एवं प्रख्यात शिक्षाविद्
डॉ० रतनलाल "शान्त"
को
सादर भेंट
[signature]
30/11/92

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सांस्कृतिकी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सांस्कृतिकी

[सांस्कृतिक निबन्धों का संग्रह]

डॉ० शिवानन्द नौटियाल

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu.
Acc. No... 615 (D)
Dated.. 23-9-09

1992

आत्माराम एण्ड संस

दिल्ली लखनऊ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Dr. R. L. Shant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

SANSKRITIKI
by
Dr. Shivanand Nautiyal

प्रकाशक : आत्माराम एण्ड संस
कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006

शाखा : 17, अशोक मार्ग, लखनऊ-226001

ISBN 81-7043-224-3

मूल्य : 70.00

सर्वाधिकार : लेखकाधीन

प्रथम संस्करण : 1992

मुद्रक : प्रतिभा प्रिंटर्स द्वारा शान प्रिंटर्स
शाहदरा, दिल्ली-32

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिन्दी जगत के जाने-माने उपन्यासकार
सुप्रसिद्ध कहानीकार, विख्यात समीक्षक
और ख्यातिप्राप्त कवि
डॉ० गंगाप्रसाद विमल
को
सादर भेंट

शिवानंद नौटियाल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपनी ओर से

'सांस्कृतिकी' मेरे आठ सांस्कृतिक लेखों का संग्रह है। समय-समय पर क्षेत्र-विशेष की सांस्कृतिक विशेषताओं को देखकर इन्हें लिखा गया है। पुस्तकाकार रूप में इन्हें एक साथ प्रकाशित होने पर प्रसन्नता है।

'ब्लिट्ज' ने कृष्ण के ऊपर एक विशेषांक निकाला था। एक लेख मुझसे मांगा गया था। मैंने सोचा कि कृष्ण की प्रतीक्षा तो हर युग में रहेगी। क्योंकि धृतराष्ट्रीय संस्कृति का बोलबाला तो आज भी है। धृतराष्ट्र की तरह आज के समय में भी 'सबको' अपने-अपने ही नज़र आ रहे हैं। अतः धृतराष्ट्रीय संस्कृति को कृष्ण ने ही तोड़ा था। इसलिए पहला लेख उन्हीं 'कृष्ण' पर है।

हिन्दू-जगत के लिए पशुपतिनाथ का विशेष महत्त्व है। शैव संप्रदाय के लिए तो पशुपतिनाथ ही सब कुछ हैं। इसलिए पशुपतिनाथ के देश नेपाल और काठमांडू पर एक संक्षिप्त परिचयात्मक लेख पाठकों के लिए लिखना उपयुक्त समझा है।

सनातन हिन्दू-जगत्, कुंभ की महिमा से पूर्ण परिचित है। हरिद्वार, कुंभ पर्व का विशेष माहात्म्य का केन्द्र है। इसलिए इस लेख में हरिद्वार के कुंभ की सांस्कृतिक-धार्मिक परम्परा का वर्णन पाठकों के ज्ञानार्थ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

'खिचड़ी'—वह भी माघ की खिचड़ी का—सम्बन्ध गुरु गोरखनाथ से जोड़ा जाता है। अतः गोरखपुर में खिचड़ी के पर्व का विस्तार से वर्णन चौथे लेख में किया गया है।

'अरुणाचल' का सारा क्षेत्र जनजातियों का चहेता अंचल है। इसी अंचल के कामेंग डिवीजन में 'मोनपा' जनजाति तवांग से बोमडीला के उत्तरी क्षेत्र में निवास करती है। उनकी होली 'टाशी' होती है। लेखक वर्ष 1960 में बोमडीला में रहता था। मोनपाय्यों से मैत्री हो गई थी। 'टाशी' पर लेखक को वहां पहुंचने का न्यौता मिला था। उसी स्मृति में यह लेख पाठकों की जानकारी के लिए प्रस्तुत है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आज 'दाम्पत्य' एक प्रश्नचिह्न बन गया है। टिहरी से प्रकाशित होने वाली 'नैतिकी' के लिए इस लेख को लिखा था। पाठकों को यह लेख रुचिकर लगेगा।

भारत की उच्च अध्ययन संस्था शिमला की ओर से महाभारतकालीन चरित्र नायकों का लोक में क्या प्रभाव है ? इस पर एक लेख लिखा था। 'गढ़वाल में महाभारतकालीन चरित्र नायकों का देवता रूप में मान्यता' उसी क्रम में लिखा जाने वाला एक अलग लेख है।

'रंवाई' क्षेत्र देहरादून और उत्तरकाशी का एक ऐसा अंचल है—जहां आज भी पांडवों, कौरवों और कर्ण की परम्पराओं का आदर नहीं होता बल्कि उन्हीं की आज्ञा पर सब कामधाम होते हैं। इस रोचक लेख से पाठकों को नई जानकारी होगी।

पुस्तक आपके हाथों तक पहुंचाने में आतमाराम एंड संस के पुरी बन्धुओं का विशेष योगदान है। मैं उनको धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकता। अन्यथा इन सभी लेखों को एक पुस्तक में समेटना कठिन था।

मेरी पत्नी श्रीमती वागेश्वरी नौटियाल तथा मेरे बच्चों ने भी मेरी सहायता की। अन्यथा घर के कामों में उलझ जाता तो यह सांस्कृतिक कार्य न हो पाता। उनको धन्यवाद देना तो अपने आपको ही धन्यवाद देना होगा। फिर भी उनका स्मरण आवश्यक है।

पाठकों की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा अभी से है।

स्नेहाधीन,
शिवानंद नौटियाल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क्रम

श्रीकृष्ण की आज भी प्रतीक्षा है 11
पशुपतिनाथ का देश काठमांडू : नेपाल 15
कुंभ और हरिद्वार की कुंभ परम्परा 24
गोरखपुर के गोरखनाथ की खिचड़ी 34
मोनपाओं की होली : 'टाशी' 40
नये संदर्भों में दाम्पत्य : एक चिन्तन 43
गढ़वाल में महाभारतकालीन चरित्र नायकों को देवता रूप में मान्यता 50
रंवाई : जहां आज भी पांडवों, कौरवों और कर्ण का राज है 96

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

श्रीकृष्ण की आज भी प्रतीक्षा है

भारतीय अस्मिता का नाम 'श्रीकृष्ण' है। भारतीय जीवन, संस्कृति एवं सभ्यता को कृष्ण से अलग नहीं देखा जा सकता है। भारतीय जीवन के मूल्यों को प्राणवंत बनाने में कृष्ण का चरित्र प्रमुख रहा है। कृष्ण के चरित्र में जहां ज्ञान, भक्ति और योग का समावेश एक साथ मिलता है, वहां उनके व्यक्तित्व में मानव की 'निम्नगा' और 'ऊर्ध्वगा' वृत्तियों का अद्भुत संश्लेषण भी मिलता है। उनके चरित्र में पारस्परिक अंतर्विरोधी वृत्तियों का रसात्मक समंजन है। माखन-चोरी और सृष्टि संचालन, रासलीला और योगसाधना तथा विलासमय कौतुक और अश्वों की वल्गा का चमत्कारी रूप उन्हीं जैसे महान व्यक्तित्व में प्राप्त होता है।

यही एकमात्र कारण है कि उन्हें ईश्वर के रूप में मान्यता प्राप्त है। उन्हें ब्रह्म, परब्रह्म, (नारायण), हरि, ईश्वर तथा विष्णु के अवतार के रूप में स्वीकार किया गया है। सगुण भक्ति के आराध्य देवताओं में भगवान श्रीकृष्ण सर्वोपरि हैं। ब्रह्मपुराण, विष्णु पुराण, महाभारत पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, हरिवंश पुराण, पद्मपुराण, गर्ग संहिता और श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में बहुत बिस्तार से लिखा गया है।

उन्हें इन ग्रंथों में शोडष कला युक्त परब्रह्म भगवान का सर्वोच्च अवतार माना गया है। श्रीमद्भागवत इन ग्रंथों में सबसे प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है।

कृष्ण के अलौकिक व्यक्तित्व एवं चमत्कारी कार्यों से संपूर्ण भारतवर्ष अनुप्राणित हुआ है। पुराणों में वर्णित चरित्र लीलाओं का सम्पूर्ण भारत पर प्रभाव पड़ा। यही एकमात्र कारण है कि भारत की प्रायः सभी भाषाओं में कृष्ण की लीलाओं का सविस्तार वर्णन मिलता है। तमिल, तेलुगु, गुजराती, मराठी, बंगला और उड़िया आदि भाषाओं में कृष्ण का अलौकिक वर्णन मिलता है।

कृष्ण ने भारतीय धार्मिक भावना को जहां प्राण प्रदान किया है, वहां भारतीय जनजीवन को भी प्राणवन्त बनाया है। यहां जन-जन मन से कृष्णमय हो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गया। इसीलिए समूचे भारत का साहित्यिक क्षेत्र कृष्ण को अपना कर लोकमानस को जीवन की वास्तविकता की ओर विशेष रूप से आकर्षित करता है। इस दृष्टि से देखें तो भगवान कृष्ण अध्यात्ममार्गियों और साहित्यप्रेमियों के चहेते, लोकप्रिय और प्राणप्रिय नायक रहे हैं।

भारत का शायद ही कोई ऐसा सम्प्रदाय हो जिसमें कृष्ण के लिए स्थान न हो। किसी-न-किसी रूप में सभी सम्प्रदायों एवं पक्षों ने कृष्ण को अपनाया है। जैन तथा बौद्ध धर्मावलम्बियों ने भी अपने-अपने धर्मों में 'कृष्ण' को आत्मसात् किया है। पुष्टिमार्गीय वल्लभ सम्प्रदाय के माननेवालों ने तो कृष्ण चरित्र के हर पहलू को अपने जीवन में ढालकर अपने आपको पूर्णत: 'कृष्णमय' कर डाला है। उनके हर काम में 'कृष्ण' के अलौकिक व्यक्तित्व की अमिट छाप कदम-कदम पर दिखायी देती है। राजस्थान का 'नाथद्वारा' उनका विशिष्ट तीर्थ है।

यह बात केवल वल्लभ सम्प्रदाय के पुष्टिमार्गी लोगों में ही नहीं है, कृष्ण ने लोक मानस को इतना अधिक प्रभावित किया है कि उन्हें भगवान के रूप में तो पूजा ही जाता है परन्तु समस्त हिमालय अंचल में उन्हें दुधारू पशुओं का भी देवता माना जाता है।

गढ़वाल-कुमाऊं में भगवान कृष्ण (बाल भगवान—दूध-दही के रसिया) देवता के रूप में भी पूज्य हैं। सद्य प्रसूता गाय-भैंस का दूध तथा घी सर्वप्रथम इन्हीं 'बालण' (बाल भगवान—कृष्ण) को अर्पित किया जाता है। गढ़वाल-कुमाऊं में कृष्ण को 'नागराजा' (जागर्जा) के रूप में पूजा और नचाया जाता है। मणिपुर तो कृष्णमय माना ही जाता है। परन्तु भारत का कोना-कोना कृष्ण की चमत्कारी लीलाओं से कदापि अछूता नहीं है। सर्वत्र उन्हें पूर्णकलाओं का अवतार भगवान माना और पूजा जाता है।

साहित्यिक क्षेत्र में तो कृष्ण अत्यन्त लोकप्रिय रहे हैं। उनकी बालसुलभ लीलाओं को जहाँ भागवत में वर्णित किया गया है, वहां ब्रजभाषा के स्वनाम धन्य कवि सूरदास ने कृष्ण की चपल चरित्रावली को जग-प्रसिद्ध कर डाला है। कृष्ण की बाललीलाओं का जितना सरस वर्णन कविश्रेष्ठ सूरदास ने किया है, शायद ही अन्य किसी कवि ने किया होगा। भारत के विभिन्न क्षेत्रों की भाषाओं में भी कृष्ण की बाललीलाओं का अद्‌भुत संसार यत्र-तत्र दिखायी देता है।

कृष्ण का गोकुल में ग्वाल-बालों के साथ गोचारण करना, नाना प्रकार के कौतुक रचाना और फिर गोकुल में गोपी-गोप आदि के साथ रसीला जीवन जीना आदि का वर्णन भी हिन्दी के अलावा अन्य भारतीय भाषाओं में भी विस्तार से मिलता है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा का वर्णन हुआ है।

लेकिन हिन्दी के रीतिकालीन कवियों ने तो राधाकृष्ण के प्यार को ही आधार मानकर असंख्य ग्रंथों की रचना कर डाली है। मैथिली भाषा के कविश्रेष्ठ विद्या-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पति से लेकर हिन्दी के प्रसिद्ध कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की 'प्रिय प्रवास' तक सर्वत्र हिन्दी साहित्य कृष्णमय रहा है। आज भी कृष्ण को आधार मानकर काव्य रचा जा रहा है।

गुजराती में कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, तेलुगु में चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, बंगला में प्रमथनाथ विशी आदि ऐसे नाम हैं, जिन्होंने कृष्ण के जीवन के विषय में विस्तार से लिखा है। हिन्दी में इधर 'पूर्णावतार', 'प्रथम पुरुष' और पुरुषोत्तम' आदि महत्त्वपूर्ण उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। इन सभी क्षेत्रों में कृष्ण का सम्पूर्ण व्यक्तित्व आकर्षण का विषय रहा है।

कृष्ण के व्यक्तित्व में एक साथ आध्यात्मिकता, बालसुलभ सरलता, रसिकता, वाक्पटुता, संगीत की मधुरता, कुशल योद्धा की वीरता, राजनीति की प्रखरता, कूटनीति की गम्भीरता, काव्य की सहजता और व्यावहारिकता की क्षमता आदि विशिष्ट गुण मिलते हैं, जिनमें कृष्ण को ढूंढ़ पाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। कहीं वह धार्मिक भावनाओं के उत्प्रेरक के रूप में विशुद्ध विष्णुस्वरूप खड़े मिलते हैं, तो कहीं कर्मपथ के उद्घोषक कर्मठ योद्धा दिखायी देते हैं, तो कहीं अन्याय से लड़ने वाले और सही दिशा दिखाने वाले कर्मवीर, पराक्रमी युग-पुरुष दिखायी पड़ने लगते हैं।

श्रीकृष्ण 'पूर्णत्व' प्राप्त साक्षात् भगवान हैं। तभी तो उन्होंने विश्व-कल्याण हेतु 'कर्म का दर्शन' अर्जुन के माध्यम से गीता के रूप में महाभारत के युद्ध में दिया था। निष्काम कर्म का सार भगवान कृष्ण ने गीता के अध्याय 2 श्लोक 47 में इस प्रकार बताया :

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूः ते संगोस्त्वकर्मणि ॥

'कर्मण्येवाधिकारस्ते' में जहां कर्म करने में मनुष्य के लिए अधिकार और स्वतंत्रता बतलाकर कर्म करने पर ही जोर दिया गया है, वहीं 'मा ते संगोस्त्वकर्मणि' से भी कर्मत्याग का निषेध करके कर्म करने पर ही जोर डाला गया है। 'मा फलेषु कदाचन' में यह स्पष्ट कहा गया है कि कर्मफल पर अधिकार नहीं है, बल्कि उसमें परतंत्रता है और 'मा कर्मफलहेतुर्भूः' से कर्म के फल का हेतु न होने के लिए वासना, आसक्ति, ममता और अभिमान से त्याग करने का आदेश दिया गया है।

'कर्मदर्शन' की सम्पूर्ण व्याख्या 'महाभारत' है। और ज्ञान-विज्ञान के इस अद्भुत ग्रंथ 'महाभारत' के केन्द्रीय चरित्र भगवान कृष्ण ही हैं। इसमें उनकी जीवन-लीलाओं और महिमा का आख्यान इतना विशद और सरस है कि यदि यह सब 'महाभारत' से अलग कर दिया जाये तो महाभारत में कुछ शेष नहीं बचेगा।

'कर्म-दर्शन' की व्याख्या इसी ग्रंथ के भीष्मपर्व में 'गीता' के नाम से हुई है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह अंश भारतीय जीवन-दर्शन का अनोखा अंश है। इसी अंश को 'गीता' के नाम से विश्व जानता है। विश्व के सर्वोत्कृष्ट आध्यात्मिक एवं दार्शनिक ग्रंथ के रूप में इसे (गीता को) प्रतिष्ठा प्राप्त है। 'गीता' में ही श्रीकृष्ण ने कहा है : 'हे अर्जुन, जब-जब धरा में अन्याय और अत्याचार बढ़ने लगते हैं और चारों ओर पापाचार होने लगते हैं, तब-तब मैं जन्म (अवतार) लेकर अन्याय और अत्याचार का अन्त करता हूं।

यह सत्य है। द्वापर के अन्त में भी ऐसा ही दृश्य उपस्थित हो गया था। उस समय, सम्पूर्ण भारत में अनेक उपद्रव हो रहे थे। आसुरी शक्ति का चारों ओर फैलाव हो चुका था। देश-भर में मार-काट, लूट, अन्याय और अत्याचार का बोल-बाला था। एक राजा दूसरे राजा का प्रबल शत्रु बन गया था। दंभ, मोह, हिंसा, घृणा, असत्य और अन्याय को जब वसुन्धरा वहन करने में असमर्थ हो गयी तो वह अपने त्राण के लिए विश्व के प्राण, सर्व चैतन्यमय भगवान के चरणों में पहुंची। भगवान ने उसकी पुकार सुनी। तब भगवान लोभ, मोह और मद से ग्रसित इस भूमि में अवतरित हुए। भगवान कृष्ण ने भांति-भांति से विभक्त, दावानल से से दग्ध, मरणोन्मुख भारत की अस्मिता को अखंड, अमर, नित्य उज्ज्वल, प्रशांत 'महाभारत' के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए अपनी अलौकिक शक्ति का प्रयोग किया।

वास्तव में 'धृतराष्ट्री' प्रवृत्ति के ऊपर धर्म की विजय का नाम ही कृष्ण है। द्वापर की तरह आज भी संपूर्ण भारतवर्ष में कई धृतराष्ट्र हैं। कोई राजनीति का 'धृतराष्ट्र' है, कोई साहित्य का 'धृतराष्ट्र' है, तो कोई समाज के ऊपर बैठा हुआ महान शक्तिसम्पन्न 'धृतराष्ट्र' है, जिन्हें द्वापर के धृतराष्ट्र की तरह सब जगह अपने ही लोग नजर आ रहे हैं। न्याय का गला घुट रहा है। योग्य व्यक्तियों का रास्ता बन्द हो रहा है। सब अपनों में ही बांट कर खाना चाहते हैं।

कृष्ण ने अपने विराट् व्यक्तित्व से तब के अनेक 'धृतराष्ट्रों' को कुरुक्षेत्र के मैदान में सही रास्ता दिखाया था। उनको उनकी करनी का फल दिया था। अर्जुन को गांडीव उठाने की प्रेरणा दी थी और 'कर्म का दर्शन' दिखाकर लोककल्याण के लिए प्रेरित किया था।

क्या आज इन सभी क्षेत्रों में अंगद की तरह भूमि पर पैर जमाये हुए 'धृतराष्ट्रों' को ध्वस्त करने के लिए स्वयं कृष्ण किसी रूप में आएंगे? कौन अर्जुन बनेगा? समय और भारत इन दोनों की प्रतीक्षा में है क्योंकि कृष्ण और अर्जुन की हर पीढ़ी और युग को आवश्यकता और प्रतीक्षा रहती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पशुपतिनाथ का देश काठमांडू—नेपाल

हिन्दू शास्त्रों में स्पष्ट लिखा है कि व्रतोपासनादि से आत्मशुद्धि होती है। आत्म-शुद्धि से शुभ कर्म होते हैं और शुभ कर्मों की प्राप्ति से शुभगति होती है। शुभगति का तात्पर्य ऊर्ध्वलोकगमन और शिवलोक (मोक्ष) की प्राप्ति है।

व्रत-उपवास के लिए अनेक पर्व हैं। परंतु शिवपुराण में लिखा है :

विचार्य सर्वशास्त्राणि धर्माश्चैवाल्यनेकश:।
शिवरात्रि व्रत निदान सर्वोत्कृष्टं प्रकीर्तितम्।
शिवरात्रि व्रतं दिव्यं भुक्ति-मुक्ति प्रद्रं सदा।

सभी शास्त्रों का विचार करने पर शिवरात्रि से उत्तम पुण्यदायक व्रत नहीं मिलता।

महाशिवरात्रि व्रत फाल्गुन माह की प्रथम (कृष्ण) त्रयोदशी तिथि को संपूर्ण हिन्दू जगत मानता है। इस तिथि के महत्त्व के विषय में पौराणिक कथा इस प्रकार बतायी जाती है। बहुत पहले देव और दानवों ने मिलकर विंध्याचल पर्वत की मथनी और शेषनाग की 'डोरी' बनाकर समुद्र-मंथन किया था। समुद्र से चौदह रत्न निकले, जिनमें अमृत और विष भी थे। अमृत बांटने के प्रश्न पर देव-दानवों के मध्य विवाद छिड़ गया। अंत में, निश्चय हुआ कि जो दल विष पियेगा, उसी दल में अमृत बांटा जायेगा। देवों की ओर से संपूर्ण विष-घट को शिवजी ने पी लिया तथा अपने गले पर ही विष को समा लिया। विष के तीव्र प्रहार से शिव का गला नीला पड़ गया। उसी दिन से शिव देवों के देव महादेव हुए—'नीलकंठ' नाम भी उन्हें उसी दिन से मिला और उसी दिन से 'शिवरात्रि' का माहात्म्यवाला दिन निश्चित हुआ।

महादेव शिव के दर्शनों की प्यास धर्मपरायण हिन्दू नर-नारी के मन की कभी न बुझने वाली प्यास है—जिसकी पूर्ति करने हेतु वह महाशिवरात्रि के दिन व्रत-उपवास करता है। बिल्वपत्रों से शिव की पूजा महारुद्र के पाठ के साथ शिवलिंग पर निरंतर पानी चढ़ा कर की जाती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सोमनाथ (सौराष्ट्र) शिव, श्री शैल (दक्षिण) में मल्लिकार्जुन शिव, उज्जयिनी में महाकालेश्वर शिव, हिमालय (गढ़वाल) में केदारेश्वर शिव, डाकिनी क्षेत्र आसाम से भीमशंकर शिव, वाराणसी में विश्वनाथ शिव, द्वारिका में नागेश शिव, बिहार में वैद्यनाथ शिव, गोमती नदी के किनारे (गोलागोकरण नाथ) त्र्यंबक शिव, सेतुबंध में रामेश्वर शिव, प्रयाग में ब्रह्मेश्वर शिव, साकेत में नागेश्वर शिव और चित्रकूट में मत्तगजेंद्र शिव, देवप्रयाग गढ़वाल में ललितेश्वर शिव, आबू में चंद्रेश्वर शिव और कश्मीर में अमरनाथ शिव की पूजा बड़े मनोयोग से की जाती है। इन स्थानों के अतिरिक्त भी कई दिव्य स्थल हैं, जहां शिव के बारह व्रतों के अवसर पर शिवजी का पूर्ण मनोयोग से पूजन होता है।

परंतु 'महाशिवरात्रि' का व्रत-पर्व नेपाल के पशुपतिनाथ मंदिर में बड़े उल्लास के साथ मनाने का महत्त्व विशेष रूप से आंका गया है। संपूर्ण विश्व के धर्मपरायण हिन्दू नर-नारी फाल्गुन मास की वसंत पंचमी से ही नेपाल के काठमांडू नगर में एकत्र होने लगते हैं। फाल्गुन मास में नेपाल का काठमांडू शिवभक्तों से भरा रहता है।

पशुपतिनाथ की महत्ता शिवरात्रि पर्व पर अधिक मानी जाती है। शिवपुराण में भी वर्णन आया है :

नयपलाख्यपुर्यां तुं प्रसिद्धायाम् महीतले।
लिंग पशुपतीशाख्यं सर्वकाम फलः प्रदम्॥
शिरोभागे स्वरूपेण शिवलिंगत दस्ति हि।
तत्वयां वर्णमिययामि केदारेश्वर वर्णने॥

नेपाल में शिवलिंग सिर रूप में पशुपतिनाथ के नाम से स्थित है—जो महा-पुण्य फलदायक है।

पुराण कथा है, द्वापर में जब पांडव राजपाट छोड़कर हिमालय गढ़वाल स्थित केदारनाथ क्षेत्र में शिवजी के दर्शन करने गये तो महादेव शिवजी ने उन्हें गोत्र हत्या का दोषी समझकर दर्शन देने से इन्कार कर दिया। पांडवों ने शिवजी का पीछा किया। पांडवों से पीछा छुड़ाने के लिए शिवजी ने महिष (भैंसे) का रूप धारण किया। जब पांडव अति समीप आ गये तो वर्तमान केदारनाथ मंदिर (गढ़वाल में) वाले स्थान पर शिवजी पृथ्वी के अंदर प्रवेश करने लगे। जैसे ही उनका अग्रभाग पृथ्वी के अंदर प्रविष्ट हुआ, भीम ने उन्हें पहचान लिया और पूंछ की तरफ से शिवजी को पकड़ लिया। उन्होंने शिवजी की पूजा की। प्रसन्न होकर शिवजी ने पांडवों को दर्शन दिये और गोत्रहत्या के दोष से मुक्त किया। शिवजी का पृथ्वी में प्रवेश करने के पश्चात् मुख रुद्रनाथ में, बांहें तुंगनाथ में, नाभि मद्‌महेश्वर में और जटा कल्पेश्वर में प्रकट हुए। केदारनाथ सहित चारों स्थान 'पंचकेदार' नाम से विख्यात हैं और गढ़वाल जिले की बदरी—केदारघाटी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में स्थित हैं। शिवजी का सिरवाला भाग (जो पृथ्वी में धंस गया था) नेपाल के काठमांडू (कान्तिपुर) नामक नगर में बागमती नदी के किनारे प्रकट हुआ था, वहीं 'पशुपतिनाथ' नाम से शिव का प्रसिद्ध पुण्यदायक तीर्थस्थल बन गया है।

'पशुपतिनाथ' का महत्त्व इसलिए भी है कि यह वही स्थल है, जहां पर देवों ने शिवजी को देवाधिदेव महादेव स्वीकार किया था।

काठमांडू नेपाल की राजधानी है। इस नगर का नाम पहले कान्तिपुर था, जिसे सन् 723 ई० में मल्ल राजा गुण कामदेव ने बागमती और विष्णुमती नदियों के संगम पर बसाया था। एक ही लकड़ी का एक बहुत बड़ा 'काष्ठमंडप' शहर के मध्य होने के कारण 'काठमांडू' हो गया, जो अब इस नाम से प्रसिद्ध हो गया है।

काठमांडू शहर से बागमती नदी के तट पर 3 मील चलने के बाद पहले गुह्ज्ञेश्वरी का कलापूर्णः मंदिर आता है, जिसके शिखर पर सोने का सुन्दर काम हुआ है। इस मन्दिर के द्वार पर राजा-रानी की सुन्दर स्वर्ण-मूर्तियां स्थापित हैं, जिनकी बगल में राजा प्रतापमल्ल की अत्यन्त सुन्दर मूर्ति भी है। लोगों का कहना है कि तीन सौ से अधिक वर्ष पहले इन्हीं मल्लराजा प्रतापमल्ल ने इस मन्दिर को बनवाया था। गुह्ज्ञेश्वरी मन्दिर की सीढ़ियों को चढ़कर एक सुन्दर चबूतरे के दर्शन होते हैं जिसके बीच में गुह्ज्ञेश्वरी (पार्वती) का मन्दिर है। मन्दिर के चारों ओर परिक्रमा करने का मार्ग बना हुआ है। इस मन्दिर में गुह्ज्ञेश्वरी की पूजा आसाम की कामाख्या देवी की तरह की जाती है। पूजा-स्थल, मुख्य द्वार पर पहुंचने के बाद, कुछ सीढ़ियों से नीचे उतरने के बाद आता है। पूजा का स्थान अत्यन्त प्रभावपूर्ण और वहुत माहात्म्य वाला है। पहली पूजा इसी मन्दिर में होती है अर्थात् इस मन्दिर में पहले पूजा गुह्ज्ञेश्वरी (पार्वती) की करनी होती है तभी पशुपतिनाथ की पूजा होती है।

गुह्ज्ञेश्वरी मन्दिर से कुछ सीढ़ियों पर चढ़ने के बाद उतार आता है—फिर विश्वविख्यात 'पागोड़ा' शैली का पशुपतिनाथ मन्दिर का विस्तृत क्षेत्र आरम्भ हो जाता है। बागमती के पूर्वी तट पर स्थित पशुपतिनाथ का मन्दिर विश्व के सर्वोत्तम मन्दिरों में से एक है। इस मन्दिर में नेपाली स्थापत्य कला की अद्‌भुत छाप दृष्टिगोचर होती है।

पशुपतिनाथ मन्दिर में प्रवेश करते ही विशाल प्रांगण के दर्शन होते हैं। द्वार चांदी के हैं। इस अहाते में कई सुन्दर-सुन्दर मन्दिर हैं। मन्दिर में कई हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियां हैं। मन्दिर के बाहर तथा इधर-उधर भी कई मूर्तियां और कहीं-कहीं त्रिशूलों की भव्य आकृतियां स्थापित हैं।

मुख्य मन्दिर के प्रांगण में नदी की विशाल प्रतिमा स्थित है। मन्दिर के सीमा-क्षेत्र में ही राम मन्दिर, गोरखा मन्दिर आदि कई मन्दिर हैं। मन्दिर के शिखर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सोने के हैं। सूर्य के प्रकाश में इनकी शोभा देखते ही बनती है। मन्दिर की सीमा के अंतर्गत एक ओर नेपाल के राजाओं के चित्र हैं और दूसरी ओर 'व्यासपीठ' है, जिस पर बैठकर नित्य वेद एवं शास्त्रों का विधिवत् पाठ होता है।

मुख्य मन्दिर की आकृति कला की अनुपम देन है। मन्दिर के चारों ओर चार विशाल द्वार हैं। परिक्रमा करने के लिए पर्याप्त स्थान है। मुख्य मन्दिर के भीतर शिवजी की अलौकिक मूर्ति है। मूर्ति की विशेषता यह है कि चारों दिशाओं में शिव की 'त्रिमूर्ति' एक ही शिला पर है। अर्थात् हर दिशा से देखने पर शिव की त्रिमूर्ति (तीन मुखवाली मूर्ति) दिखायी देती है।

मन्दिर में पूजा कर्नाटक के ब्राह्मणों के द्वारा सम्पन्न की जाती है। रुद्राक्ष की भेंट इस मन्दिर की सर्वश्रेष्ठ भेंट मानी जाती है। बेलपत्र, रुद्राक्ष और कमल चढ़ाये जाते हैं। नेपाल में शिवरात्रि के दिन इस मन्दिर में पशुपतिनाथ की विशिष्ट पूजा होती है।

बागमती के किनारे-किनारे चबूतरे बने हैं। बागमती की शोभा इनसे बढ़ती है। परन्तु नेपाल में मृतकों को इन चबूतरों पर जला देने की प्रथा है।

नेपाल की काठमांडू घाटी जहां पशुपतिनाथ के लिए विख्यात है—वहां इस घाटी में अनेक प्राकृतिक एवं ऐतिहासिक स्थल हैं, जो मनुष्य को स्वतः अपनी ओर खींच लेते हैं। धार्मिक भावना के लोगों को भी इस घाटी में अनेक देवस्थान और मन्दिर मिलते हैं, जिन्हें देखकर अलौकिक चेतना जाग पड़ती है।

काठमांडू शहर में जैसे ही प्रवेश करते हैं, वैसे ही विश्व के विशाल मैदानों में से एक मैदान—'तुंडीखोल' आंखों के सामने आ जाता है। नेपाल राज्य के प्रायः सभी उत्सव इसी मैदान में सम्पन्न किये जाते हैं। नेपाली सेना की परेड भी 'तुंडीखोल' मैदान में होती है।

'तुंडीखोल' मैदान में 'भीमसेन की मीनार' है। यह मीनार 165 फुट ऊंची है। काठमांडू का यह आकर्षण भारत के कुतुबमीनार की तरह है।

'तुंडीखोल' के दक्षिणी कोने पर संगमरमर का सुन्दर शहीद द्वार बना है। दरबार चौक के अन्दर स्थित है।

'हनुमान ढोका'—मल्ल राजाओं का पुरातन निवास-स्थान 'दरबार चौक' है जिसको नेपाली 'लायकू' के नाम से पुकारते हैं। 'दरबार चौक' (हनुमान ढोका) शहर के बीचोबीच स्थित है। यह राजा का मुख्य शासन-स्थल है।

'दरबार चौक' के पूर्वी छोर पर विशाल राजमहल है। राजमहल के मुख्य द्वार पर 'हनुमान' की विशाल मूर्ति है। दूर से ऐसा लगता है मानो स्वयं वीरता के अवतार 'हनुमान' जी इस राजप्रासाद की रक्षा करने खड़े हैं। मुख्य द्वार पर पत्थर के दो शेर दोनों ओर से महल की शोभा बढ़ाते हैं।

'दरबार चौक' (हनुमान ढोका) के इस राजमहल की आकृति 'पागोड़ा' ढंग से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बनी हुई है। महल में कई मंजिलें हैं। यह महल नेपाली स्थापत्य कला का अद्भुत चमत्कार है। इसके द्वार पर हनुमान और दरबार चौक के अन्दर 'काल भैरव' की विशाल प्रतिमा हैं। इस महल की हर मंजिल सुन्दरता की एक नयी ज्योति प्रकट करती है। बाहर के दृश्य यहां से बड़े आकर्षक लगते हैं। पूरा महल नेपाल की पुरानी कारीगरी का अद्भुत नमूना है। लकड़ी तथा पत्थरों पर बारीक कारीगरी इस महल का मुख्य आकर्षण है। प्रवेश-द्वार के समीप नेपाल के राजाओं के बड़े-बड़े चित्र क्रमानुसार लगे हुए हैं। महल में राजा-रानी के बैठने के स्थान भी बने हुए हैं। राजा का राज्याभिषेक आज भी इस महल के प्रांगण में होता है। आज भी इस महल में पाटन (ललितपुर), कीर्तिपुर (काठमांडू) और भक्तिपुर के राजाओं के बैठने के अलग-अलग कमरे हैं। इस महल में एक सुन्दर नृत्य चौक है, जहां सांस्कृतिक कार्य सम्पन्न होते हैं।

महल से लगे कई मन्दिर हैं, जिनमें कुमारी देवी का प्रसिद्ध मन्दिर है। लकड़ी की कारीगरी इस मन्दिर की विशेषता है। कन्याओं को 'मनवांछित' फल देनेवाली यह देवी संपूर्ण नेपाल में प्रसिद्ध है।

'तुलजाभवानी' का सिद्धिदायक मन्दिर भी इसी महल के पास है। दुर्गाष्टमी का विशेष मेला लगता है, जिसमें 154 भैंसों की बलि दी जाती है। अब यह 'बलि' 'नारियल' की 'बलि' देने पर भी स्वीकारी जाने लगी है, फिर भी नेपाल में बलि-प्रथा की जड़ें बहुत गहरी हैं।

महल के समीप मछेन्द्रनाथ, नरदेवी, कटक नारायण, अन्नपूर्णा और इंद्राणी और कई मन्दिर हैं, जिनमें 'पंचमुखी हनुमान' का मन्दिर भी प्रसिद्ध है।

'इन्द्र चौक' नामक मुख्य बाजार के चौक में स्थित—'आकाश भैरव' का मन्दिर भी बहुत आकर्षक है। नेपाल में इन्द्र की यात्रा निकलती है, जिसमें कुमारी देवी, भैरव व गणेश का रथ निकलता है और इस मन्दिर में पहुंचता है। वर्षा के लिए हर वर्ष (अगस्त-सितम्बर में) यह रथ-यात्रा-उत्सव मनाया जाता है।

वर्तमान महाराज का निवास 'नारायण हिटी दरबार' भी दर्शनीय है। प्रसिद्ध 'नारायण हिटी' जलधार दरबार के पश्चिमी भाग में है। दरबार में जाने के लिए आवश्यक आज्ञा लेनी होती है।

काठमांडू की शोभा वहां का राष्ट्रीय संग्रहालय भी है। दरबार चौक से पश्चिम की तरफ करीब दो किलोमीटर दूरी पर स्थित है। संग्रहालय के एक कक्ष में देवी-देवताओं की मूर्तियां हैं। एक कक्ष में बर्तन और चर्खे हैं तो दूसरे कक्ष में तोपें और तलवारें हैं। नेपोलियन बोनापार्ट ने राणा जंगबहादुर को उनकी वीरता पर प्रसन्न होकर जो तलवार भेंट की थी—वह तलवार इसी कक्ष में है। दूसरे कक्ष में सन् 1856 में तिब्बतियों से छीनी गयी चमड़े की तोप को बड़े अच्छे ढंग से रखा गया है। दूसरी मंजिल में अस्त्रों का संग्रह है, जिसमें अलग-अलग राजाओं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

द्वारा प्रयुक्त हथियार हैं। तीसरी मंजिल में हस्तलिपियों का संग्रह है। पोशाकें, तमगे, मरे हुए (पक्षी, शेर, मगर) जीव-जन्तु और प्रसिद्ध सेनापतियों की टोपियां यहां सुरक्षित हैं। एक सम्पूर्ण खण्ड में बौद्ध-प्रतिमाएं हैं।

काठमांडू अर्थात् नेपाल घाटी 209 वर्गमील के क्षेत्रफल में फैली है, जिसके चारों तरफ सीढ़ीनुमा पर्वत-शृंखलाएं हैं। मानो विधाता ने इस घाटी की सुरक्षा के लिए एक के पीछे दूसरे और फिर तीसरे-चौथे सुदृढ़ पर्वतों को जान-बूझकर निर्मित किया है। किंवदन्ती है कि हजारों वर्ष पहले इस घाटी में एक विशाल झील थी, जो भूकंप के प्रभाव से टूट गयी और वहां पर एक सुन्दर घाटी ने अपना सुन्दर स्वरूप बना लिया। कहते हैं कि इस घाटी में ईसा से 6 सौ वर्ष पूर्व गौतम बुद्ध आये थे। ऐसा भी कहा जाता है कि ईसा से 250 वर्ष पहले महाराजा अशोक भी इस घाटी में आये थे। आज भी इस घाटी में उनके स्मृति-चिह्न सुरक्षित हैं। कई शताब्दियों तक नेपाल का इतिहास यों ही चलता रहा कि राजपूत राजा अमसू वर्मा (सन् 595-640 ई०) का गौरवपूर्ण इतिहास मिलता है, जिसने नेपाल में सबसे प्रथम सुनियोजित राज्य चलाया। अमसू वर्मा की मृत्यु के बाद नेपाल राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। इसी समय भारत से कई राजपूत राजा नेपाल गये, जहां उन्होंने कई राज्य स्थापित किये। काठमांडू उपत्यका के अंतर्गत आज भी कई नगर हैं, जो किसी-न-किसी राजा की राजधानियां रहे हैं।

14वीं शताब्दी में प्रथम मल्ल राजा जयस्थिति ने अपने पराक्रम से सम्पूर्ण नेपाल को अपने अधीन कर एक सुदृढ़ राज्य बनाया। राजा जयस्थिति के पोते यक्षमल्ल ने नेपाल राज्य का काफी विस्तार किया था। नेपाल के इतिहास में मल्ल राजाओं के पराक्रम की सुन्दर गाथाएं हैं। महाराजा यक्षमल्ल ने 40 वर्षों तक शासन किया था। उनका युग नेपाली इतिहास में स्वर्णयुग के नाम से जाना जाता है। मल्ल शासकों के समय कई मन्दिरों का निर्माण हुआ। नेपाली कला का विकास इन्हीं मल्ल शासकों के समय हुआ माना जाता है।

नेपाल की सुन्दरता ने भारतीय हिन्दू राजपूत राजाओं को अपनी ओर आकर्षित किया। सन् 1723 ई० में महाराजा पृथ्वीनारायण शाह ने नेपाल पर विजय प्राप्त की और सम्पूर्ण नेपाल को एक सूत्र में बांधकर शासन किया। नये नेपाल के निर्माता महाराजा पृथ्वीनारायण शाह को ही माना जाता है। उसके बाद राजा-रानी मंत्रियों के इशारों पर चलने लगे। राना जंग बहादुर ने अपनी प्रतिभा और बहादुरी से शासन अपने हाथ में ले लिया और सदैव के लिए प्रधानमन्त्री पद राणाओं के लिए सुरक्षित कर, राजाओं को उंगलियों पर नाचने वाला बना दिया। 104 वर्ष बाद 1950-51 में महाराजा वीरविक्रम शाह ने भारत की मदद से, राणाओं से अपने हाथ में शासन ले लिया। महाराजा महेन्द्र वीर विक्रम शाह ने भारत की सहायता से नेपाल को बाहरी दुनिया से जोड़ने का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संकल्प किया, जिसे वर्तमान महाराजा आगे बढ़ा रहे हैं।

नये नेपाल की झलक देखने से पूर्व काठमांडू उपत्यका के कुछ दर्शनीय स्थलों, मन्दिरों और प्राकृतिक स्थलों की जानकारी करनी भी आवश्यक है।

बुद्ध मन्दिर—काठमांडू से 8 किलोमीटर उत्तर-पूर्व की ओर धान और मक्का के सुन्दर खेतों के मध्य विशाल बुद्ध का मन्दिर है। इसे बूढ़ानाथ का मन्दिर भी कहते हैं, यहां का बौद्ध स्तूप संसार के स्तूपों में सबसे बड़ा है।

स्वयंभूनाथ का मन्दिर—संसार के प्राचीनतम बुद्ध मन्दिरों में है। यह बौद्ध मन्दिर काठमांडू शहर से पश्चिमी क्षेत्र में लगभग 3 किलोमीटर दूरी पर घाटी से करीब 250 फुट की ऊंचाई पर स्थित है। स्वयंभूनाथ के मन्दिर में पहुंचने के लिए 300 सीढ़ियों को चढ़ना होता है। इसमें मुख्य स्तूप हैं। चारों ओर भिन्न-भिन्न मुद्राओं में बुद्ध की सुन्दर मूर्तियां हैं। मन्दिर के चारों ओर परिक्रमा स्थल के पास 209 घंटे लगे हैं जिन पर 'ऊं मनी पदॅम हूं' उकेरा हुआ है। स्तूप के अति निकट बुद्ध की विशाल और बहुत ही आकर्षक मूर्ति है। इस मन्दिर का शीर्ष भाग नोकीला है, जिस पर सोने का काम किया गया है। स्वयंभूनाथ का मन्दिर अत्यन्त रमणीय स्थान पर बना है। मन्दिर के पीछे शीतला देवी का सुन्दर मन्दिर है।

बालाज जल धारा उद्यान—काठमांडू से उत्तर-पश्चिम की ओर 5 किलोमीटर की दूरी पर नेपाल का औद्योगिक क्षेत्र बालाजू है, जहां अनेक उद्योग-धन्धे चलाये जा रहे हैं। कुछ ही दूर 'बाईसधारा' नामक विशाल उद्यान है। इसके बीच में जलाशय तथा झरने बनाये गये हैं। भांति-भांति के फूलों से भरा यह उद्यान आकर्षण का केन्द्र है। उद्यान में प्रवेश करते ही आजिमादेवी (बच्चों की देवी) का मन्दिर आता है। मन्दिर के सामने शिला पर शिवजी की अति आकर्षक मूर्ति है—जिसके इधर-उधर छोटी-छोटी कई मूर्तियां हैं।

उद्यान के दायीं ओर ऊंचे-ऊंचे पहाड़ हैं। उन हरे-भरे पहाड़ों में से इस स्थान पर पहाड़ से गिरते हुए एक झरने के पानी को रोका गया है, जिससे 'बाईस' झरने बनाये गये हैं। इनका पानी जब प्रपात की तरह धरती पर गिरता है तो उस स्थल का सौन्दर्य देखते ही बनता है। बाईस प्रपातों के होने के कारण इस स्थान का नाम 'बाईसधारा उद्यान' पड़ा। इस उद्यान में छठी शताब्दी में बनी हुई एक 'नीलकंठ' की शेषशायी मूर्ति है, जिसके दर्शन करने दूर-दूर से धार्मिक यात्री आते हैं।

काठमांडू से 15 किलोमीटर दूर भडगांव (भक्तपुर) नेपाल की प्राचीन संस्कृति और अद्‌भुत स्थापत्य कला का दर्शनीय नगर है। शंख की आकृति में बने इस नगर की स्थापना सन् 865 ई० में मल्ल राजा आनन्द ने की थी। 4600 फुट की ऊंचाई पर स्थित यह नगर 4 वर्गमील में फैला है।

भक्तपुर का सबसे बड़ा आकर्षण 'दरबार चौक' है। लकड़ी पर की गयी सुन्दर कारीगरी देखने योग्य है। इस चौक के चारों तरफ महल और प्राचीन मन्दिर हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यहां के कुछ आकर्षण इस प्रकार हैं—

'सिंहद्वार' की सिंह प्रतिमा अति सुन्दर है। सिंहद्वार के भवन में नरसिंह नारायण और भैरव की सुन्दर मूर्तियां हैं।

स्वर्णद्वार कला का अद्भुत नमूना है। राजा रणजीत मल्ल ने इस स्वर्णद्वार को सन् 1756 में बनवाया था। द्वार पर लकड़ी की सुन्दर कला है। काली और गरुड़ की सुन्दर प्रतिमाएं स्वर्णद्वार की शोभा बढ़ाती हैं। यही द्वार मुख्य महल का प्रवेशद्वार है। महल में 55 खिड़कियां हैं। यह कला का बेहतरीन नमूना है। यह महल सन् 1727 ई० में राजा यक्ष मल्ल ने बनवाया था। यह महल मल्ल राजाओं का निवास था। लकड़ी की अलौकिक नक्काशी, सुन्दर बालकनी और 55 खिड़कियों के लिए यह महल संसार में प्रसिद्ध है।

महल के अन्दर एक सुन्दर गैलरी है, जिसमें हिन्दू तथा बौद्ध कला की सुन्दर-सुन्दर तस्वीरें हैं।

महल के अन्दर एक चौक में अष्टादश भैरव और तुलजा भवानी की अति भव्य मूर्तियां हैं, जिन्हें देखकर श्रद्धा से मस्तिष्क झुक जाता है। वहीं द्वार पर राजा भपतेन्द्र मल्ल की विशाल और आकर्षक मूर्ति है।

महल के अन्दर कुमारी चौक आकर्षण का मुख्य केन्द्र है। यहां पर दुर्गा की अनेकों मूर्तियां है। माहेश्वरी, पंचमुखी हनुमान, सिद्धि विनायक, कालन्दी और उग्रचण्डी की सुन्दर मूर्तियां हैं। वत्सला मन्दिर में लकड़ी और पत्थरों पर उकेरी गयी कला आश्चर्य में डाल देती है। वंशी की ध्वनि करने वाले 'घंटे' के दर्शन यहीं होते हैं।

भक्तपुर का नयातपोला पंचमंजिला मन्दिर अलौकिक कला का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। इस मन्दिर की पांचों मंजिलों की कला दर्शनीय है। आकार की दृष्टि से यह मन्दिर 'पागोड़ा' शैली में बना हुआ सबसे ऊंचा मन्दिर है। इस मन्दिर की विशेषता यह है कि पहली मंजिल की मूर्तियों से दूसरी मंजिल की मूर्तियां दस गुनी, तीसरी की दूसरी से दस गुनी, तीसरी से चौथी की दस गुनी और चौथी से पांचवीं मंजिल की दस गुनी भारी हैं। हर मंजिल में कला का अनोखा बांकपन है। सबसे ऊपर की मूर्तियां सर्वश्रेष्ठ और कला की दृष्टि से अधिक लोकप्रिय हैं। सन् 1708 में राजा भूपतेन्द्र मल्ल ने शिवजी की आराधना करने के लिए इस मन्दिर 'नयातपोला' की स्थापना करवायी थी।

यहां एक पशुपतिनाथ का मन्दिर भी है, जिसे राजा भूपतेन्द्र मल्ल के पिता राजा सुमति जयजीतमित्र मल्ल ने सन् 1682 ई० में शिव की विशिष्ट पूजा हेतु बनवाया था। यह मन्दिर लकड़ी की कलाकारी के लिए विख्यात है।

यहां तीन मंजिला एक सुन्दर शिव मन्दिर भैरवनाथ का है। यह मन्दिर राजा जगतज्योति मल्ल ने शिव को 'भैरवरूप' में विशेष आराधना हेतु बनवाया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

था। इस मन्दिर में विलक्षण कला के नमूने देखने में आते हैं। पत्थर की 'भैरव-मूर्ति' यहां का मुख्य आकर्षण है।

दत्तात्रेय शिव का अद्भुत और आकर्षण से भरा हुआ दर्शनीय मन्दिर भी शिव भक्तों की विशेष रुचि का मन्दिर है। इसमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की सुन्दर मूर्तियां हैं। सन् 1727 ई० में राजा यक्षमल्ल ने इसका निर्माण करवाया था। कहते हैं दत्तात्रेय शिव का यह मन्दिर एक ही वृक्ष की लकड़ी से बनवाया गया था।

'सिद्धपोखरी' यहां का एक और आकर्षण है। तीन सौ गज लम्बे और एक सौ गज चौड़े ताल में नहाना उत्तम समझा जाता है। पोखराघाटी का बिंदुवासिनी का मन्दिर भक्तपुर के समीप के सूर्यमन्दिर व चांगू नारायण का मन्दिर सदा आकर्षण के केन्द्र हैं। पाटन के पास बागरा बरही का सुन्दर मन्दिर भी सुन्दरता का प्रतीक है।

तीर्थों, मन्दिरों का देश नेपाल, कला के लिए भी बहुत प्रसिद्ध है। कला की, संस्कृति की और इतिहास की काठमांडू (कान्तिपुर), पाटन (ललितपुर) व भडगांव (भक्तपुर) में ही इतनी वस्तुएं हैं कि यदि सूक्ष्म दृष्टि से उन्हें देखें तो वर्षों का समय चाहिए। परन्तु नेपाली कला और भारतीय हिन्दू धर्म के लिए नेपाल के प्रायः सभी मन्दिरों व स्थानों का अवलोकन ही नहीं, अपितु इन पर विशेष रूप से शोध कार्य होना चाहिए।

नेपाल अपनी प्राकृतिक सुन्दरता के लिए भी विख्यात है।

सागर माथा (एवरेस्ट 29028), अन्नपूर्णा (26545), धौलागिरी (26795), गौरीशंकर (23440), फूल चोकी चोयू (26750), मकालू (27820), मलसालू (26638) और लांगतांग हिमालय (14000) आदि ऊंची-ऊंची पर्वत-मालाएं पर्वतारोहियों को आकर्षित करती रहती हैं।

पोखरा की सुन्दर घाटी, धुलीखल का रमणीय वातावरण, नामचे बाजार की सुन्दरता, हेलाम्बू-गोसाईकुण्ड लांगतांग की घाटी का आकर्षण, कुम्भू क्षेत्र तथा उसके सुन्दर कुम्भू ग्लेशियर का आनंद गुसाईगुण्ड ताल, फेवाताल, बेगनसाताल, रूपाताल का अद्भुत सौन्दर्य, पाटन के समीप गोदावरी पिकनिक स्थल का मोहक वातावरण और लुम्बनी का बुद्ध भगवान वाला आकर्षण नेपाल की भूमि में आने के लिए हर पर्यटक को आमंत्रित करता रहता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुंभ और हरिद्वार की कुंभ परम्परा

धर्मप्राण भारत के जन-जीवन में 'कुंभ' (कलश) का विशिष्ट स्थान रहा है। सुसज्जित 'कुंभ' (कलश), कला और संस्कृति का ही प्रतिनिधित्व नहीं करता बल्कि वह सम्पूर्ण सृष्टि तथा पूर्ण व्यक्तित्व का प्रतीक भी माना गया है। यही नहीं, 'कलश' को ब्रह्मा, विष्णु और महेश का साक्षात् रूप माना गया है। सात द्वीपों, सात सागरों और चार वेदों को इसी कुंभ (कलश) के विभिन्न अंगों में समाया हुआ माना गया है :

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः।
मूले तत्र स्थितियो ब्रह्म मध्ये मातृगणाः स्मृताः॥
कुक्षौ तु सागराः सर्वे, सप्त द्वीपा वसुन्धरा।
ऋग्वेदोथ यजुर्वेदो सामवेदोथर्वणः।
अग्नेश्च संहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रितः॥

देवपूजा करना भारतीय संस्कृति की अपनी विशिष्टता रही है। देवपूजन, प्रतीकों के माध्यम से किया जाता रहा है। 'कलश' की पूजा करने का विधान इसी परम्परा का अंग है।

इसीलिए 'कुंभ' अर्थात् 'कलश' की पूजा सर्वप्रथम करने का विधान सनातन धर्म के आस्थावान भारतीयों में सर्वत्र पाया जाता है। वैसे भी जल-भरे घट को मंगलमय शकुन के रूप में देखा जाता है। परन्तु पुराणों में 'कलश' को अमृत घट कहने का विशेष अभिप्राय है। इसका निर्माण सागर-मंथन से उद्भूत पीयूष (अमृत) रखने के लिए किया गया था। सभी देवताओं की विशिष्ट कलाओं को लेकर इसका निर्माण किये जाने के कारण ही इसे 'कलश' की संज्ञा दी गई :

"पीयूष धारणार्थाय निर्मितो विश्वकर्मणा"

(अर्थात् विश्वकर्मा ने अमृत रखने के लिए इस (कलश) का निर्माण किया।)

आखिर ऐसे कुंभ को बनवाने की आवश्यकता देवताओं को क्यों पड़ी? श्रीमद्भागवत, स्कन्द पुराण और महाभारत आदि ग्रंथों में एक कथा इस प्रकार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वर्णित है :

"राजा बलि से जब देवतागण पराजित हो गये और जगह-जगह भटकने लगे, तो अन्त में वे भगवान के पास अपनी दुर्दशा का बखान करने बैकुंठ धाम पहुंचे। भगवान ने देवताओं को आपद्धर्म का महत्त्व समझाया कि विपद में बलवान शत्रु से मेल करना हितकर होता है, इसलिए ऐसे समय तुमको राजा बलि से मेल कर लेना चाहिए। भगवान ने कहा—हे देवताओ, बहुत बड़ा काम करना हो, तो शत्रु से संधि करना उपयुक्त रहता है। मेल-मिलाप कर तुम्हें राजा बलि को समुद्र-मंथन के लिए मना लेना चाहिए। समुद्र-मंथन से रत्न, औषधि और अमृतादि कई दुर्लभ दिव्य वस्तुएँ प्राप्त होंगी, जिन्हें तुम अपनी विशिष्ट समझदारी से बाँट लेना, ताकि तुम्हारी शक्ति असुरों से बढ़ती रहे। इस कार्य में मैं भी तुम्हारी सहायता करूंगा और तुम्हारे हित को देखते हुए समय-समय पर आवश्यक परामर्श भी देता रहूंगा।

भगवान के आदेशानुसार देवताओं ने बलि से मेल-मिलाप बढ़ाया और अन्त में विश्वकल्याणार्थ विचार-विमर्श किया गया। दोनों पक्षों ने समुद्र-मंथन करने का प्रस्ताव मान लिया। समुद्र-मंथन के लिए मथनी (विचार स्तम्भ) की जगह मंदराचल को बनाया। वासुकी नाग उस विचार स्तम्भ को घुमाने वाले संचालक (डोरी) बने। जिन्हें एक ओर से देवों ने पकड़ा और दूसरी ओर से दानवों ने पकड़कर मथनी के सहारे घुमाना शुरू किया। मथनी के आधार, स्वयं भगवान, कच्छप बनकर उस मंदराचल पर्वत को अपनी पीठ पर धारण करने वाले बने, जिससे क्षीर सागर को मथने में कोई कठिनाई न हो।

समुद्र-मंथन प्रारम्भ हुआ। पहले विष निकला, जिसको पीने के लिए कोई तैयार न हुआ। अन्त में शिवजी ने सारा विष पी लिया। तभी से वे नीलकण्ठ भगवान शिव बने, क्योंकि उन्होंने सारा विष अपने कंठ में ही समा लिया और उनका कंठ विष के प्रभाव से नीला पड़ गया था। दूसरी बार कामधेनु गाय निकली, जिसे ऋषियों को दे दिया गया। तीसरी बार उच्चःश्रवा घोड़ा निकला—उसे राजाबलि को दे दिया गया।

समुद्र-मंथन से चौथी बार ऐरावत हाथी निकला, जिसे इन्द्र को भेंट किया गया। पांचवीं बार कौस्तुभमणि (हृदय की शक्ति को बढ़ाने वाली मणि) प्राप्त हुई, जिसे भगवान विष्णु को समर्पित किया गया। छठी बार पारिजात नामक वृक्ष निकला। सभी जीवों के हितार्थ इस वृक्ष को देवताओं को भेंट किया गया।

सहस्रं कार्तिके स्नानं माघ स्नान शतानि च।
वैशाखे नर्मदा कोटि कुंभ स्नानेन तत्फलम्।

(अर्थात्—कार्तिक मास के एक हजार स्नान, माघ मास के सौ स्नान के बराबर होते हैं।)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सातवीं बार वीणा वाद्यरता, नृत्य गुणान्विता रम्भा नाम की अप्सरा निकली। उसे स्वर्ग की नर्तकी बना दिया गया। आठवीं बार लक्ष्मी जी निकलीं, जिन्होंने स्वयं अपनी इच्छा से विष्णु भगवान को वरण कर लिया। नवीं बार वारुणी निकली, उसे दैत्यों ने ले लिया। दसवीं बार बाल चन्द्रमा प्राप्त हुआ। उसे संसार के कल्याणार्थ आकाश में स्थान दिया गया। ग्यारहवीं बार शंख, बारहवीं बार हरिधनु और तेरहवीं-चौदहवीं बार हाथ में अमृत-कुंभ लिए धन्वन्तरि वैद्य प्रकट हुए। यह वही कुम्भ—कलश था जिसका निर्माण बड़े कौशल से देवताओं की सम्पूर्ण कलाओं को समेटकर अमृत रखने के लिए किया गया था।

अमृत के लिए ही यह समुद्र-मंथन हो रहा था। अन्त में वह प्राप्त हो गया। अमृत-घट को देखकर समुद्र-मंथन का कार्य बन्द हो गया। देव-दानव अमृत-घट को प्राप्त करने के लिए संघर्ष करने लगे। बृहस्पति के इशारे पर इन्द्र-पुत्र जयन्त 'अमृत-कलश' को लेकर भागे। दैत्य गुरु शुक्राचार्य के आदेशानुसार दानव-दल 'अमृत-कलश' (घट) को छीनने के लिए जयन्त के पीछे-पीछे दौड़े। अमृत-कलश को अपने-अपने अधिकार में रखने के लिए देव-दानवों में 12 दिन तक संघर्ष होता रहा। इस अवधि में प्रतिदिन अमृत-कलश को सुरक्षा की दृष्टि से अलग-अलग स्थानों में रखा गया। इन बारह स्थानों में से आठ स्थान स्वर्ग में और चार स्थान भूमंडल में स्थित हैं। भूमंडल के चार स्थानों में हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक हैं। इन्हीं चार स्थानों पर अमृत-पूरित कुंभ को रखने-उठाने से अमृत की बूंदें छलकी थीं। उन्हीं अमृत-बूंदों की प्राप्ति हेतु जनसमुदाय उमड़ पड़ा था। आज भी इन चारों स्थानों पर प्रत्येक बारहवें वर्ष 'कुंभ महापर्व' का आयोजन होता है। देवताओं के बारह दिन भूमंडल के लोगों के बारह वर्ष के बराबर होते हैं। इसीलिए यह पर्व बारहवें वर्ष मनाया जाता है, जिसे पूर्ण कुंभ की संज्ञा दी गई है। इन चारों स्थानों पर प्रत्येक बारह वर्षों में एक बार कुंभ-पर्व का मेला लगता है। हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन तथा नासिक में क्रमशः तीन वर्ष के अन्तराल के पश्चात् कुंभ महापर्व पड़ता है। हरिद्वार एवं प्रयाग में एक कुंभ-पर्व से दूसरे कुंभ-पर्व के बीच छः वर्ष के बाद अर्धकुंभ का आयोजन होता है। यह एक प्रकार से कुंभ-पर्व का ही छोटा रूप है। परन्तु उज्जैन और नासिक में अर्धकुंभ की परम्परा नहीं है। अप्रैल में हरिद्वार, जनवरी में प्रयाग, जुलाई में उज्जैन और अक्तूबर में नासिक का कुंभ-पर्व होता है। इन पर्वों के लिए ज्योतिषशास्त्रीय विधान के अनुसार ग्रह-स्थिति निर्धारित है। इन्द्र-पुत्र जयन्त जब अमृत-कुंभ को लेकर भागा था तो चन्द्र ने उसे (कुंभ को) लुढ़कने से, सूर्य ने टूटने-फूटने और बृहस्पति ने अमृत-कुंभ को दैत्यों के अधिकार में जाने से रोका था। शनि ने भी अमृत-कुंभ की सुरक्षा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। अतः इन्हीं ग्रहों की युति को देखकर कुंभ-पर्व की तिथियां निश्चित की जाती हैं :

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सूर्येन्दु गुरु संयोगः स्तद्राशौ यत्र वत्सरे ।
सुधा कुम्भप्लवे भूमौ कुम्भो भवति नान्यथा ।

अर्थात् जिस दिन सुधा-कुंभ गिरने की राशि पर सूर्य, चन्द्रमा और बृहस्पति का संयोग हो, उस समय पृथ्वी पर कुंभ पर्व का योग पड़ता है, अन्यथा नहीं। परन्तु, हरिद्वार आदि चारों स्थानों में कुंभ-पर्व का समय राशि, ग्रहयोगों के अनुसार अलग-अलग कहा गया है।

कुंभे गुरौ हरिद्वारे, तीर्थराजे वृषे गुरौ।
धार यां घटे जीवे, गोदावर्या कर्कगे गुरौ।

कुंभ के गुरु में हरिद्वार, वृष के गुरु में प्रयागराज, तुला के गुरु में उज्जैन और कर्क के गुरु में नासिक का कुंभ होता है। इसी तरह सूर्य की स्थिति को देखकर भी कुंभ पर्व की तिथियां निश्चित की जाती हैं। मेष के सूर्य में हरिद्वार, मकर के सूर्य में प्रयाग, तुला के सूर्य में उज्जैन और कर्क के सूर्य में नासिक का कुंभ होता है।

कुंभ का माहात्म्य

सनातन जगत में कुंभ-पर्व में नहाने का विशेष महत्त्व आंका गया है :

वैशाख और नर्मदा के करोड़ों स्नानों का फल कुंभ के एक स्नान के फल के बराबर होता है।

कुंभ-पर्व के स्नानों का विशेष माहात्म्य है, परन्तु विशिष्ट कुंभ तो हरिद्वार का ही माना गया है। क्योंकि, कुंभ राशि का पर्व तो हरिद्वार में ही पड़ता है।

कुंभ योगे हरिद्वारे यह स्नानेन यत्फलम् ।
नाश्वमेध सहस्रेण तत्फलं लभते भुवि ॥

(अर्थात्—हजारों अश्वमेध यज्ञ करने से भी जो ऐश्वर्य प्राप्त नहीं हो सकता, वह ऐश्वर्य मात्र हरिद्वार में कुंभ-पर्व के अवसर पर स्नान करने से प्राप्त हो जाता है।)

और 'कुंभ-पर्व' का योग गंगाद्वार (हरिद्वार) में कुंभ राशि में बृहस्पति होने से ही माना गया है :

पदमिनी नायके मेषे कुंभं राशिगतो गुरुः ।
गंगाद्वारे भवेद्योगः कुम्भंनामा तदोत्तमः ॥

(अर्थात्—मेष में सूर्य हो और कुंभराशि में बृहस्पति हो तो गंगाद्वार (हरिद्वार) में कुंभ का उत्तम योग बनता है। ऐसे पर्व पर गंगाद्वार (हरिद्वार) के 'कुंभ-पर्व' पर स्नान किया जाय तो पुनर्जन्म नहीं होता :

कुंभराशि गते जीवे तथा मेषे गते रवौ ।
गंगाद्वारे कृतं स्नानं पुनरावृति वर्जनम ॥

'कुंभ-पर्व' का महत्त्व हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक में समान रूप से आंका गया है, परन्तु ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कुंभ राशि में बृहस्पति की युति

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

केवल मात्र हरिद्वार के कुंभ में ही स्वीकारी गई है। हरिद्वार के अलावा शेष तीन स्थानों के कुंभ-पर्व की तिथियों में वृष और सिंह आदि राशियों का विचार किया जाता है और ग्रह भी बदल जाते हैं, परन्तु हरिद्वार के कुंभ पर्व में ऐसा नहीं होता। अतः कुंभ विशेषण हरिद्वार कुंभ के लिए ही सार्थक लगता है। इसका मतलब कदापि यह नहीं है कि शेष तीन स्थानों के 'कुंभ स्नान' का उतना महत्त्व नहीं है। पर्व विशेष के अवसर राशियों की युति इतनी प्रभावकारी रहती है कि उस वेला विशेष के स्नान से मनुष्य पर प्रभाव अवश्य पड़ता है। मनुष्य को इसीलिए 'ग्रहों' का पुतला कहा गया है, क्योंकि उसके ऊपर ग्रहों की दशाओं का विशेष प्रभाव पड़ता है। जन्म के ग्रहों के अधीन ही मनुष्य का जीवन चलता है।

इसीलिए ग्रहों की युति का आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक प्रभाव सृष्टि पर अवश्य पड़ता है।

'कुंभ स्नान' के लिए भी ग्रहों की युति का समय निर्धारित होता है। अतः स्नान का 'मुहूर्त' ज्योतिषियों के गहन अध्ययन एवं मनन के पश्चात् निकाला जाता है।

संक्रान्ति कालादुभयत्र नाडिका।
पुण्यामताः षोडश षोडशोणगे॥
निशीथ तो र्वाग परत्र संक्रमे।
पूर्वा परा ह्न्तिम पूर्व भागयो॥ (मुहूर्त अ 4-58)

(अर्थात्—संक्रान्ति के पहले और पीछे 16 घड़ी पुण्यकाल माना जाता है। यदि आधी रात से पहले मुहूर्त तिथि बैठी हो, तो पहले दिन तीसरे पहर पुण्यकाल का पर्व माना जाता है। आधी रात से पहले बैठी हो, तो पहले दिन तीसरे पहर में पुण्य-काल का पर्व माना जाता है। आधी रात के बाद अर्के, तो दूसरे दिन सुबह पुण्य-काल माना जाता है और ठीक आधी रात अर्के तो दोनों दिन पुण्यकाल माना जाता है।)

पुण्यकाल पर्व का समय भी विभिन्न संक्रान्तियों का अलग-अलग होता है।

त्रिशंत कर्कटे नाडयो मकरस्य दशादिका।
तुला मेषस्य विंशस्यात् शेषा षोडश षोडश।

(अर्थात्—कंठाभरण के अनुसार कर्क की संक्रान्ति का पुण्यकाल 30 घड़ी का, मकर की संक्रान्ति का 40 घड़ी का और तुला तथा मेष संक्रान्ति का 20-20 घड़ी का पुण्यकाल माना गया है। शेष राशियों की संक्रान्ति का पुण्यकाल 16 घड़ी पहले और 16 घड़ी पीछे माना गया है।

हरिद्वार के कुंभ पर्व के स्नान के लिए यह देखा जाता है कि सूर्य, मेष राशि में किस घड़ी संक्रमण कर रहे हैं। उसी वेला को 'अमृत वेला' कहा जाता है और उस वेला में गंगा-स्नान के लिए स्नानार्थियों में होड़ लग जाती है कि कौन पहले

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुंभ-पर्व के पुनीत अवसर की 'अमृत वेला' गंगा में स्नान करें ? इस पर बहुत पहले से संघर्ष होता रहा है। संन्यासियों में नागा संन्यासी पहले 'स्नान' का लाभ उठाते रहे हैं। बाद में वैरागी और अंत में संसारी लोग इस 'अमृत वेला' में कुंभ का प्रसाद प्राप्त करने हेतु गंगा में श्रद्धा से स्नान करते हैं।

हरिद्वार के कुंभ महापर्व का मेला मुख्यत: रोड़ी बेलवाला मैदान में लगता है। नागा संन्यासियों और स्नानार्थियों की जमात इसी मैदान से होकर मुख्य स्नान स्थल ब्रह्मकुंड तक जाती है। नागा संन्यासियों और साधुओं के स्नानार्थ गमन को शाही यात्रा के नाम से जाना जाता है। इस शाही जुलूस में वाद्य-यंत्रों के साथ हाथी, घोड़ों तथा ऊंटों का रेलपेल भी देखने योग्य होता है। नागा संन्यासियों, दशनामी साधुओं और वैरागियों के स्नान के बाद ही लाखों यात्री-गण स्नान करते हैं। प्रशासन की ओर से अखाड़ा परिषद की सलाह से स्नानादि की व्यवस्था की जाती है। कहीं भी कोई कठिनाई नहीं होती। महीनों पहले से व्यवस्था की जाती है। संन्यासियों का जमावड़ा अपने-अपने अखाड़ों में कई महीनों पहले से होने लगता है। रोड़ी बेलवाला मैदान में विभिन्न आश्रम अपना-अपना डेरा डाल-कर प्रवचन, कीर्तन, भजन और सत्संग आदि का आयोजन करते रहते हैं। देश-प्रदेश के पंडाल भी इसी मैदान में लगाये जाते हैं। कुंभ के पुनीत पर्व पर समस्त भारत की भावात्मक एवं सांस्कृतिक एकता के दर्शन यहीं होते हैं। अद्भुत भारत यहीं सिमट कर आ जाता है। कुंभ के इस पर्व में अनेक मुद्राओं में वर्षों से समाधिस्थ सन्तों, योगियों और विलक्षण साधुओं को भी देखा जा सकता है। रंग-बिरंगी पोशाकों में सजे तमिलनाडु, केरल, गोआ, पांडिचेरी, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, कश्मीर और बंगाल-असम आदि प्रान्तों के लोग जब धार्मिक भावना की पवित्र माला के मनकों की तरह पंक्तिबद्ध होकर लाखों की संख्या में मुख्य स्नान स्थल 'ब्रह्मकुंड' की तरफ जाते हैं, तो नास्तिक से नास्तिक व्यक्ति भी इस महान् धार्मिक जनसमुद्र को देखकर आश्चर्य में पड़ जाते हैं। विदेशों के लोग इस परम्परा को देखकर ईश्वर की महान सत्ता पर विश्वास करने लगते हैं।

कुंभ-पर्व की परम्परा

कुंभ-स्नान की परम्परा को विद्वान वेदकाल से जोड़ते हैं। वेदों में 'कुंभ' का वर्णन अवश्य है परन्तु 'कुंभ-स्नान' से उसका स्पष्ट अर्थ नहीं लगता। हमारा ऐसा अनुमान है कि 'कुंभ-स्नान' का प्रारम्भ वेदकाल के तुरन्त बाद शुरू हो गया होगा। वेदकाल में चार आश्रमों का वर्णन है। चौथा आश्रम संन्यास गिना गया है। चौथे आश्रम के संन्यासियों का कार्य जहां विरक्त जीवन जीने का था—वहां वे राष्ट्र को सद्बुद्धि देने का कार्य भी करते थे। सामान्य जन के सामने समाज के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अग्रणी माने जाने वाले साधु-संत ज्ञानोपदेश देते थे। बारह या छठे वर्ष एक स्थान पर बैठकर राष्ट्रहित के लिए चिन्तन करते थे। राजा-महाराजा उन स्थानों पर आकर अपना कर्तव्य-पाठ पढ़ते थे। संन्यासियों के द्वारा भजन, कीर्तन ही नहीं उद्बोधन भी किया जाता था। कुंभ-पर्व के स्नान में संन्यासियों की विशिष्ट भूमिका से ऐसा लगता है कि वेदकाल में या वेदकाल के तुरन्त बाद ही कुंभ-पर्व-स्नान का पर्व मानाया जाना शुरू हो गया होगा।

संन्यासियों में भी नागा संन्यासियों की अत्यन्त प्राचीन परम्परा इस देश में मिलती है। वेद और पौराणिक काल में कई ऋषि इस परम्परा के मूलस्रोत रहे हैं। दत्तात्रेय, शुकदेव, अवधूत मुनि और कपिल, पतंजलि आदि ऐसे ऋषि रहे हैं, जिनका इस नागा संन्यासियों के विशिष्ट सम्प्रदाय से गहरा सम्बन्ध रहा है। वैदिक वाङ्मय में इन अवधूत संन्यासियों का विस्तार से उल्लेख हुआ।

कुंभ महापर्व में इन नागा संन्यासियों की प्रमुख भूमिका पौराणिक काल से निश्चित रूप से मानी जाती है। 'अमृत वेला' में 'अमृत स्नान' और 'अमृत पान' का अधिकार सर्वप्रथम इन्हें ही प्राप्त करने का धार्मिक आदेश है। कुंभ-पर्व से जुड़े हुए इन संन्यासियों का प्रभाव जैन धर्म के प्रवर्त्तक महावीर स्वामी पर भी पड़ा होगा; क्योंकि नागा संन्यासियों का 'करतल भिक्षा तरुतल वास' वाला सिद्धान्त उन्होंने भी स्वीकारा था। सिकन्दर महान् (356-323 ई० पूर्व) जब भारत आये थे, तो नागा साधुओं से प्रभावित हुए थे। उनके साथियों ने 'जिन्मो सोफिस्ट' (नंगे सूफी दार्शनिक) नाम से इनकी पहचान की थी।

शंकराचार्य का योगदान

भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं धर्म की एकता वाली विचारधारा को शंकराचार्य ने पल्लवित एवं पुष्पित किया। सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में बांधने का कार्य उन्हीं जैसे महान् मानव के द्वारा सम्भव था। अतः आदि गुरु शंकराचार्य ने बौद्ध धर्म के व्यापक प्रभाव के बाद सनातन धर्म के जीर्णोद्धार का बीड़ा उठाया। देश को एक सूत्र में बांधने के लिए उन्होंने ज्योतिर्मठ, शृंगेरीमठ, गोवर्द्धन मठ और शारदा मठ नामक चार मठ स्थापित किए, जिन्हें क्रमशः उत्तराम्नाय, दक्षिणाम्नाय, पूर्वाम्नाय और पश्चिमाम्नाय के नाम से जाना जाता है। इन मठों के लिए क्षत्र पद, सम्प्रदाय, गोत्र, वेद, उपनिषद, महावाक्य, इष्टदेव और तीर्थ भी उन्होंने निर्धारित कर दिये। साथ ही अपनी शिष्य परम्परा को भी उन्होंने इन मठों के लिए नियुक्त कर दिया। ये शिष्य दशनामी संन्यासियों के नाम से विख्यात हुए।

कुंभ-पर्व परम्परा जो पहले से चली आ रही थी, वह बौद्ध काल में शायद 'महादान पर्व' के रूप में बदल गई होगी। इस 'महादान पर्व' का उल्लेख सातवीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शताब्दी के चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी अपने यात्रा-विवरण में किया है। तब भी साधु-संन्यासी कुंभ-पर्व की तरह प्रयाग और हरिद्वार आदि स्थानों में सम्पन्न-होने वाले इन 'महादान पर्वों' में सम्मिलित होते थे। इन सम्मेलनों में सम्राट हर्षवर्धन (612-647 ई०) जैसे राजा अपनी सम्पत्ति को प्रत्येक 6 या 12 वर्षों में आकर विद्वानों, साधुओं, गरीबों एवं अनाथों में बांट देते थे। इन सम्मेलनों में राष्ट्र को उन्नत करने के लिए गोष्ठियां होती थीं। भिक्षुओं एवं साधुओं के माध्यम से राष्ट्र में हुए कार्यों की भी समीक्षा होती थी।

जगत गुरु शंकराचार्य ने देश में फैले हुए साधु-सन्तों को एकत्र किया और बौद्धकाल के प्रभाव को दूर करने के लिए उन्हें 'दशनाम' संन्यासियों की श्रेणी में बांट कर प्रत्येक मठ से उन्हें सम्बन्धित कर दिया। दश संघों में दीक्षित 'दशनामीं' संन्यासी गिरि, पूरी, भारती, वन, अरण्य, पर्वत, सागर, तीर्थ, आश्रम एवं सरस्वती नाम से जाने जाते हैं। 'दशनामी' संन्यासियों में 'शस्त्रधारी' और 'शास्त्र-धारी' नामक दो श्रेणियां हैं। 'शस्त्रधारी' साधु शस्त्रों के संचालन तथा मल्ल विद्या आदि पराक्रमी विद्याओं में निपुण होते हैं। जबकि 'शास्त्रधारी' साधु अध्ययन-अध्यापन कर आत्मिक विकास करते हुए आध्यात्मिक विकास में लगे रहते हैं। 'शस्त्रधारी' अखाड़ों में संगठित रहते हैं।

'दशनामियों' के 'अखाड़े' धर्म-रक्षा हेतु बनाये गये थे। पहला 'अखाड़ा' 'आह्वान' के नाम से बनाया गया था। बाद में आवश्यकतानुसार 'अखाड़ों' का निर्माण होता गया। इन 'अखाड़ों' के साधुसन्तों ने केवल बौद्ध धर्मावलम्बियों से ही संघर्ष नहीं किया बल्कि मध्ययुग में हिन्दू मन्दिरों एवं तीर्थों की रक्षा करने हेतु भी इन्होंने कई लड़ाइयां लड़ी थीं। सन् 1666 में हरिद्वार की रक्षा के लिए सन् 1748 में अहमद शाह अब्दाली से इलाहाबाद में और 1757 में मथुरा के समीप गोकुल में इन्होंने संघर्ष किया था। इस संघर्ष में हजारों नागा संन्यासी वीरगति को प्राप्त हुए थे।

कुंभ स्नान में भी संघर्ष

कुंभ स्नान में नागा संन्यासी पहले स्नान करने जाते हैं। परन्तु समय का ऐसा प्रभाव पड़ा कि बीच-बीच में अन्य अखाड़े प्रभावशाली हो गये, जिससे उनमें प्रति-द्वंद्विता बढ़ गई और कुंभ स्नान करने में वे पहल करने लगे।

कुंभ-पर्व में पहले शैव साधुओं का ही वर्चस्व था। परन्तु, वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवल हो जाने से वैरागियों ने भी कुंभ-पर्व में प्रथम पुण्य प्राप्त करने हेतु 'अमृत वेला' में पर्व स्नान करने का मन बनाया, जिसका परिणाम यह हुआ कि संन्यासियों और वैरागियों में युद्ध छिड़ गया। सन् 1760 ई० में ऐसा ही युद्ध हुआ था, जिसमें साधु अधिक मारे गये थे। उस संघर्ष को देखकर यात्रीगण पहाड़ी मार्गों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से भागकर अपने-अपने घरों में पहुंचे थे।

सिखों के भी अखाड़े बने। उनका भी संघर्ष दशनामियों से हुआ। यहां तक कि 1796 की 10 अप्रैल को हरिद्वार में सिख-घुड़सवार सैनिकों ने संन्यासियों पर आक्रमण कर दिया। महन्त मानपुरी सहित सैकड़ों संन्यासी मारे गये। सिख भी लगभग 20 मारे गये। परन्तु कुंभ-पर्व पर सदैव संन्यासियों का ही प्रमुख झण्डा फहराता रहा। मुख्य संघर्ष संन्यासियों और वैरागियों में चलता था। दशनामियों के मध्य भी संघर्ष था। अन्त में 15 जनवरी 1879 में एक समझौता हुआ कि निरंजनी अखाड़ा के संन्यासी पहले जाकर अपना झंडा गाड़ेंगे। उसके बाद निरवानी अखाड़ा, वैरागी शोभाराम अखाड़ा, उदासीयान अखाड़ा खुर्द, उदासीयान अखाड़ा और बाद में निर्मला अखाड़ा जाकर अपना-अपना झंड़ा गाड़ेंगे।

कालान्तर में ऐसे संघर्षों को टालने के लिए प्रशासन की मदद से अखाड़ों की परम्परा से यह निर्णय किया गया है कि पहले तपोनिधि श्री निरंजनी अखाड़ा, श्री पंच आनन्द अखाड़ा सहित स्नान करेगा। उसके बाद श्री पंच दशनाम जूना अखाड़ा, श्री पंचाह्वान व श्री पंच अग्नि अखाड़ों सहित कुंभ-स्नान करेगा। उसके बाद पंचायती अखाड़ा, महानिर्वाणी श्री पंच अटल अखाड़ा सहित स्नान करेगा। शेष सम्प्रदाय के अखाड़े वाले इनके बाद स्नान करेंगे। यात्रीगण इन सम्प्रदायों के बाद ही कुंभ-पर्व का अमृत स्नान कर सकेंगे।

और इसी पवित्र भावना से कुंभ स्नान पूर्ण हो जायेगा। सभी स्नानार्थियों को अपार शक्ति का आभास होगा। इस पर्व पर भाषा, प्रान्त, रहन-सहन, बोल-चाल, खान-पान और जीवन-शैली की विभिन्नता कहीं आड़े नहीं आती, बल्कि सभी स्नानार्थी 'अमृत कलश' से छलके हुए 'अमृत-बूंदों' को प्राप्त करने हेतु एक ही संकल्प 'अपना, परिवार का, देश का और विश्व का कल्याण हो' लेकर ब्रह्मकुण्ड (अमृत कुंड) में नहाने पहुंचते हैं। यह पर्व भारत की मौलिक एकता का पर्व है जिसमें सब एक जैसे ही दिखाई देते है और सबका एक ही लक्ष्य होता है।

वर्तमान कुंभ-पर्व की प्रासंगिकता

आज के सन्दर्भ में 'कुंभ-पर्व' की प्रासंगिकता और भी अधिक हो गयी है। देवासुर-संग्राम में असुरों का प्रभाव बढ़ गया था। चारों ओर आसुरी प्रवृत्तियों का बोलबाला हो गया था। देवता-गण उनके कुकृत्यों से तंग आ गये थे। आज भी चारों ओर आसुरी शक्तियों का प्रभाव समाज में बढ़ गया है। भ्रष्टाचार, अनाचार और दुराचार का बोलबाला हो गया है। 'आतंकवाद' की 'आसुरी वृत्ति' ने राष्ट्र को खतरे में डाल दिया है। देव-तुल्य लोगों का जीवन संकट में है। अतः देश और समाज को बचाने के लिए आज पुनः देवासुर-संग्राम करना होगा तभी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'अमृत' प्राप्त होगा और समाज को बचाया जा सकेगा। सभी राष्ट्रप्रेमी रूपी देवताओं और सज्जन एवं सदाचारी लोगों की सम्पूर्ण कलाओं अर्थात् अपनी-अपनी शक्तियों को समेट कर पुनः 'अमृत-कलश' का निर्माण करना आवश्यक हो गया है। 'अमृत-कुंभ' की प्राप्ति पर ही राष्ट्र-रूपी देवता का त्राण हो सकेगा। कुंभ-पर्व के सभी स्नानार्थियों से प्रार्थना है कि 'राष्ट्ररूपी कलश' की पूजा करना न भूलें। सबसे अधिक कल्याण तो इसी 'राष्ट्र-कलश' की पूजा करने से होगा; क्योंकि इसके देवत्य से ही हम सभी 'कुंभ-पर्व' स्नानार्थियों का भविष्य उज्ज्वल होगा। 'कुंभ-पर्व' आज सम्पूर्ण देश का है और हम सब स्नानार्थी हैं। तात्पर्य यह है कि देश के समक्ष आज 'राष्ट्र भावना' का संकट आ गया है। इस भावना की रक्षा 'कुंभ-पर्व' जैसे पर्व के उद्देश्य के पालन करने से ही सम्भव है, क्योंकि जगत-गुरु शंकराचार्य जैसे राष्ट्र-निर्माताओं ने भारत को एक सूत्र में बांधने का जो मूल-मंत्र इस देश के निवासियों को दिया है, उसके पालन करने से ही राष्ट्र की सुरक्षा सम्भव है।

चार धामों के साथ चार कुंभ-पर्वों को एक साथ जोड़कर[1] एक अटूट भारत को बनाने की जो यह सुदृढ़ श्रृंखला है, वह भारत के जन-जन को एक साथ मिलाये रखने की मजबूत कड़ी है। यही कड़ी भारत को भावनात्मक दृष्टि से एक सूत्र में बांधे हुए है। इसी मजबूत कड़ी को और शक्ति देने के लिए 'कुंभ-पर्व' की सफलता की कामना है।

1. यह पर्व (कुंभ) भारत की भौगोलिक एकता का पर्व है जिसमें सब एक जैसे ही दिखाई देते हैं और सबका एक ही लक्ष्य होता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गोरखपुर के गोरखनाथ की खिचड़ी

खिचड़ी का विश्वविख्यात मेला मकर संक्रांति के पावन पर्व पर गोरखपुर के प्रसिद्ध गुरु गोरखनाथ के मन्दिर में लगता है। भारत-नेपाल के लाखों भक्त इस विशिष्ट तिथि से एक दिन पूर्व गोरखपुर के जगविख्यात नाथ संप्रदाय के इस सिद्ध-पीठ के विशाल प्रांगण में उपस्थित होना सौभाग्य समझते हैं। रात्रिपर्यन्त गुरु गोरखनाथ का भजन-कीर्तन और पूजन करते हैं। ब्राह्म बेला में, पवित्र गोरखताल के शुद्ध जल में स्नान कर भगवान गोरखनाथ के दर्शन कर खिचड़ी का चढ़ावा चढ़ाते हैं। हजारों मन चावल-दाल की खिचड़ी का चढ़ावा चढ़ता है। सायंकाल तक खिचड़ी के कई पहाड़ खड़े हो जाते हैं। भक्तगण खिचड़ी (चावल-दाल) के ढेरों के ऊपर चलकर चढ़ावा चढ़ाने रात्रि की पूजा तक आते ही रहते हैं।

खिचड़ी के अवसर पर गोरखनाथ मन्दिर में विशिष्ट पूजा होती है। धर्म, दर्शन, संस्कृति एवं आध्यात्मिक विषयों पर सम्मेलन किये जाते हैं। नाथ सम्प्रदाय के विशिष्ट विद्वानों के भाषण होते हैं। गुरु गोरखनाथ को खिचड़ी का भोग लगाया जाता है और भक्तगण भी मन्दिर के प्रांगण में भोग प्राप्त करते हैं।

खिचड़ी के भोग अथवा प्रसाद प्रदान करने की परम्परा स्वयं गुरु गोरखनाथ ने अपने हाथों से शुरू की थी जो आज तक बिना किसी बाधा के निरन्तर चली आ रही है।

गए तो फिर वापस न आए

कहते हैं एक बार महायोगी गोरखनाथ कश्मीर का भ्रमण करने के उपरान्त पंजाब होकर कांगड़ा की ओर चल पड़े। ज्वालादेवी के ज्वालामुखी नामक तीर्थ से होकर जब वे जा रहे थे, तो मां ज्वाला उनके स्वागतार्थ बाहर आयीं और बैठने का अनुरोध करने लगीं। गोरखनाथ मन्दिर में गये। कुछ समय के बाद उठे और चलने लगे। मां ज्वाला ने आग्रह किया कि वे एक दिन रुक जाएं और उनके हाथ का बना हुआ भोजन ग्रहण करें। गोरखनाथ ने कहा—मां ज्वाला जी, आपके यहां

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मांस-मदिरा आदि तामसिक पदार्थों का भोजन बनता है, जोकि मेरे जैसे जोगी के लिए ग्राह्य नहीं है। मां ज्वाला ने अनुनय-विनय कर कहा—जोगी, आप मेरा निमन्त्रण स्वीकार कर लें। आप जैसा भोजन खाना चाहेंगे, वह मैं स्वयं तैयार कर खिलाऊंगी। देवी के विशेष आग्रह करने पर गोरखनाथ ने कहा—मुझे आपका आमंत्रण स्वीकार है, परन्तु भोजन का अन्न मैं स्वयं भिक्षा मांगकर लाऊंगा। मैं जोगी ठहरा, मेरे आने की कोई निशि्चत तिथि और समय नहीं है। देवी, आप चूल्हा जलाए रहें और इस डिबिया में पानी खौलाए रहें। जब भी आऊंगा, तत्काल ही आपको खाना तैयार कर खिलाना होगा। यह आश्वासन देकर गोरखनाथ ज्वालामुखी से चल पड़े।

गढ़वाल-कुमाऊं के सुंदर पर्वतीय क्षेत्रों का भ्रमण करते हुए गोरखनाथ जी हिमालय की तराई में रोहिणी और राप्ती नदियों के संगम के अति निकट एक मनोहारी स्थल पर बैठ गये। भिक्षापात्र उन्होंने सामने रख दिया। गांव के लोगों ने जोगी के भिक्षापात्र में अन्न डाला, परन्तु खप्पर खाली पड़ा रहा। गांव-गांव इस विस्मय की चर्चा होने लगी। सारे क्षेत्र के लोग अनाज के बोरे के बोरे लाये और खप्पर में डालने लगे, परन्तु भिक्षापात्र खाली का खाली ही पड़ा रहा। अन्त में गोरखनाथ ने उसी स्थल पर एक झोंपड़ी को अन्न से भर दिया। सार्वजनिक रूप से घोषणा करवा दी कि जितने भी अभावग्रस्त लोग हैं, वे उस झोंपड़ी से मनचाहा अन्न ले जा सकते हैं।

एक दिन गोरखनाथ ने पांच सेर चावल-दाल की खिचड़ी बनायी और अपने खप्पर में भर दी। उसी खिचड़ी से उन्होंने लाखों लोगों को भरपेट भोजन करवा दिया, फिर भी खप्पर की खिचड़ी समाप्त नहीं हुई। उपस्थित जन-समुदाय को गोरखनाथ ने बताया कि वे ज्वालादेवी के अग्राह्य भोजन को छोड़कर आपके इस प्रेममय भोज को जीमने और जिमाने के लिए यहां आए हैं।

सैकड़ों वर्ष बीते परन्तु गोरखनाथ ज्वालामुखी लौटकर नहीं आए। मां ज्वाला ने उन्हें ढूंढ़ने के लिए नागार्जुन को भेजा। नागार्जुन को गोरखनाथ कहीं नहीं मिले। वे ज्वाला पर्वत पर तप करने लगे। जब नागार्जुन नहीं लौटे, तो मां ज्वाला ने भीम को भेजा। भीम घूमते-घूमते उसी स्थल पर जा पहुंचे, जहां पर गोरखनाथ ने खिचड़ी का भोग लगाया था और अपने भक्तों को भी प्रसाद प्रदान किया था। भीम ने गुरु गोरखनाथ को साष्टांग दंडवत प्रणाम किया और मां ज्वाला का संदेश सुनाया कि वे आपको भोजन करने हेतु बुला रही हैं। गोरखनाथ ने प्रसन्न होकर कहा—भीम, तुम बहुत थके हुए हो। जाओ मेरी कुटिया के समीप आराम करो। मैं अवसर आने पर तुम्हें बुला लूंगा।

कहते हैं कि उसी स्थल पर भीम आज तक सोये पड़े हैं और मां ज्वाला आज भी ज्वालामुखी में भगवान गोरखनाथ की प्रतीक्षा में खिचड़ी के पानी को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खोला रही हैं।

नाथ संप्रदाय की पुस्तकों में एक शब्द मिलता है, जिसमें यह कहा गया है कि जब सतयुग का शुभारंभ होगा, तब गोरख की इस डिबिया में खिचड़ी का भोग पकेगा। इस समारोह में सिद्धर्षि मुनिजन, देव, गंधर्व और किन्नर गण भाग लेंगे। भक्तों की पंक्ति अर्थात् भोग (प्रसाद) पाने वालों की पंक्ति कांगड़ा की ज्वाला से नेपाल की ज्वाला तक रहेगी।

आज भी खिचड़ी बंटती है

जिस स्थान पर भगवान गोरखनाथ ने अपना आसन बिछाया था, वह स्थान आज के गोरखपुर जिले के गोरखनाथ मंदिर की भूमि में है। जहां पर गोरखनाथ बैठे थे, वहां पर उनका मंदिर है। जिस स्थल पर उन्होंने अपनी गोरखधूनी जाग्रत की थी, आज भी वह धूनी उसी तरह जाग रही है। जिस अखंड ज्योति को गोरखनाथ ने स्वयं जलाया था, आज भी वह ज्योति उसी तरह जल रही है। और जिस दिन उन्होंने खिचड़ी का भोग ग्रहण कर खिचड़ी का प्रसाद बांटा था, उसी दिन गोरखनाथ मन्दिर के विशाल प्रांगण में लाखों भक्त खिचड़ी का चढ़ावा चढ़ाते हैं और खिचड़ी का भोग प्राप्त कर अपने जीवन को सार्थक समझते हैं।

वह दिन मकर संक्रांति का पावन पर्व था। उसी पर्व से वह संपूर्ण क्षेत्र गोरखमय हो गया। गोरखपुर जिले का नाम उन्हीं के नाम पर पड़ा। गोरखनाथ के चमत्कारों का इतना प्रभाव पड़ा कि उस क्षेत्र के गोरखनाथ इष्टदेव ही हो गए। गोरखपुर जिले की ही बात नहीं है, संपूर्ण भारतवर्ष को गोरखनाथ ने अपने अलौकिक कृत्यों से प्रभावित किया है। दक्षिण से उत्तर और पश्चिम से पूर्व तक का कोई ऐसा भारतीय क्षेत्र नहीं है, जिस पर गोरखनाथ का प्रभाव न हो। भारतीय साहित्य में नाथ संप्रदाय व सिद्धों का विशेष प्रभाव है। हिन्दी-जगत के कई विख्यात विद्वानों ने गोरखवाणी से लेकर शब्द साहित्य तक का अच्छा अध्ययन किया। हिन्दी के प्रथम डी० लिट० स्व० डॉक्टर पीतांबर दत्त बड़थ्वाल का यह प्रिय विषय था। हिन्दी-जगत के सुप्रसिद्ध लेखक डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० धर्मवीर भारती, डॉ० शांतिप्रसाद चंदोला और पं० परशुराम चतुर्वेदी आदि ऐसे विद्वान हैं, जिन्होंने गोरख की शिक्षाओं का अध्ययन ही नहीं किया, बल्कि उनके साहित्य पर शोध कार्य भी किया है। स्व० डॉ० रांगेय राघव ने पीएच० डी० की उपाधि गोरखनाथ पर ही ली थी। स्व० डॉ० गोपीनाथ कविराज गोरखनाथ के तंत्र-मंत्र साहित्य के ज्ञाता थे।

नेपाल में जो स्थान गोरखनाथ को आज भी प्राप्त है, वह किसी अन्य देव को प्राप्त नहीं है। नेपाल के नोटों पर और सिक्कों पर श्री श्री श्री गोरखनाथ अंकित

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहता है। मत्स्येन्द्रनाथ की रथयात्रा का रथ स्वयं महाराजा नेपाल आज भी स्वयं खींचते हैं। गोरखनाथ के कारण ही नेपाली अपने आपको गोरखा कहला कर गौरवान्वित होते हैं।

नेपाली हजारों की संख्या में खिचड़ी के पर्व पर सम्मिलित होकर गोरखनाथ के मंदिर में विशेष पूजा-अर्चन करते हैं।

लोक विश्वास है कि भगवान गोरखनाथ आज भी गोरखपुर के इस सिद्ध-पीठ में सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहते हैं और खिचड़ी के अवसर पर वहां अवश्य विद्यमान रहते हैं। नाथ संप्रदाय का यह जाग्रत सिद्धपीठ माना जाता है।

अब वहां नया मंदिर है

आज गोरखनाथ के उस प्राचीन सिद्धस्थल पर उसी पुराने मन्दिर के ऊपर ही संगमरमर का बहुत बड़ा और कलात्मक मन्दिर बन गया है। जिस स्थान को गोरखनाथ ने अपने बैठने का स्थल चुना था, वहां पर आज संगमरमर की गोरखनाथ की मूर्ति विराजमान है, जिसकी दिन में तीन बार पूजा होती है। मंदिर के आगे विशाल प्रांगण है। प्रवेश-द्वार से भीतर घुसते ही बायीं ओर पवित्र ताल है, जिसमें भक्तगण स्नान करते हैं। ताल के समीप ही भीम की 13 मी० 71 सें० मी० लम्बी प्रतिमा सोई हुई अवस्था में एक सुन्दर मन्दिर के अन्दर बनाई गई है। लोग कहते हैं, यहीं पर भीम सोये थे, जो आज भी वहां सोये पड़े हैं। उसी दिशा में आगे बढ़ने पर सिद्ध महंतों की समाधि है। बाबा गंभीरनाथ, बाबा ब्रह्मनाथ और महंत दिग्विजयनाथ के समाधि मन्दिरों में उनकी मूर्तियां भी स्थापित की गई हैं, जिनमें उनकी प्राण प्रतिष्ठा भी की गई है। इन्हीं समाधियों से आगे 'गोरक्षनाथ पीठ' के महंत का निवास है। गोरक्षनाथ पीठ पर गोरखनाथ की चरण पादुकाओं का नित्य पूजन होता है। मुख्य मंदिर के भीतर मुख्य मूर्ति भगवान गोरखनाथ की है। मुख्य मूर्ति के दाएं भाग में अखंड ज्योति जलती है, जिसे स्वयं गोरखनाथ ने प्रज्वलित किया था। मुख्य मन्दिर के बाहर पीछे की ओर दायीं ओर गणेश की कलात्मक संगमरमर की मूर्ति और बायीं तरफ काली की अति सुन्दर प्रतिमा है। बाएं भाग में मुख्य मन्दिर के मुख्य द्वार के समीप बाहर की ओर भैरव की आकर्षक मूर्ति तथा मन्दिर के अंदर कीर्तन-भजन, वेदपाठ आदि के लिए विशाल कक्ष है।

मन्दिर के बाहर बायीं ओर भगवान शंकर, रुद्रावतार हनुमान, लक्ष्मी जी के सुंदर मन्दिर हैं। इन मन्दिरों के पास गोरखधूनी है, जो गोरखनाथ ने जलाई थी और अब तक जल रही है। पास ही गोरख बाबा को चढ़ाये गए त्रिशूलों का मंदिर है, जो स्वयं भी भक्तों का आकर्षक केंद्र है। ऐसा कहा जाता है कि भक्तगण मन-चाही मुराद पाने पर भगवान गोरखनाथ को त्रिशूल भेंट करते हैं। लाखों त्रिशूल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इसके प्रमाण हैं।

महंत दिग्विजयनाथ की दूरदर्शिता और वर्तमान महंत अवैद्यनाथ की सूझबूझ ने गोरखनाथ मन्दिर को देश का सर्वोत्तम आध्यात्मिक केन्द्र और नाथ संप्रदाय का श्रेष्ठतम स्थल बना दिया है।

गोरखपुर नगर में गोरखनाथ मन्दिर की ओर से कई कॉलेज चल रहे हैं। संस्कृत महाविद्यालय में छात्रों को प्रथमा से आचार्य तक निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। आयुर्वेदिक महाविद्यालय भी चलाया जाता है, जिसमें छात्रों से कोई फीस नहीं ली जाती। छात्रों के लिए निःशुल्क भोजन और रहने की व्यवस्था भी है। देश के कोने-कोने से आने वाले विद्वानों को ठहरने-खाने की मुफ्त व्यवस्था है। पीठासीन महंत श्री अवैद्यनाथ जी गोरखपुर क्षेत्र से उ० प्र० विधान सभा के विधायक हैं। उनकी अनेक योजनाएं हैं। अभी कुछ दिन पहले वे गढ़वाल कुमाऊं क्षेत्र से लौटे हैं। वे चाहते हैं कि नाथ सम्प्रदाय या गोरखनाथ के ऊपर पर्वतीय अंचल में शोध कार्य हो। वे इस विषय के छात्रों को छात्रवृत्ति देने की घोषणा कर चुके हैं। गोरखपुर में उनकी एक सुन्दर लाइब्रेरी है, उसमें दुर्लभ ग्रंथ हैं। महंत अवैद्यनाथ जी सच्चे अर्थों में गोरख के प्रतीक हैं। उन्हें हर समय जनकल्याण की ही चिन्ता सताती रहती है। प्रतिदिन सैकड़ों की संख्या में भक्तगण उनके गोरख चौके से भोजन का भोग पाते हैं। गोरखनाथ के सिद्धांतों का सही अर्थों में वे प्रचार करने लगे हैं। योगवाणी नामक पत्रिका से वे इस पुनीत कार्य को कर रहे हैं।

गोरखनाथ को शिव का अवतार माना जाता है। गोरखनाथ के रूप में शिव जी संसार को अपने में लीन करने में समर्थ हैं। यही कारण है कि कहीं-कहीं खिचड़ी का पर्व शिवपूजन के साथ भी किया जाता है।

उत्तर भारत में मकर संक्रांति के दिन प्रातःकाल से ही स्नान कर शिव का पूजन किया जाता है। तिल का इस तिथि में विशेष महत्त्व माना जाता है। तिल-युक्त जल से स्नान, तिल का हवन, तिल का उबटन, तिलमिश्रित जल का पान, तिल का भक्षण और तिल के लड्डुओं के साथ खिचड़ी का दान इस पर्व में विशेष फलदायक माना जाता है।

दान में खिचड़ी ही क्यों दी जाती है? यह प्रश्न भी उठ सकता है। गोरखनाथ जन समाज की चेतना के प्रतीक थे। लोक में घुलमिल जाना उनकी विशेषता थी। भारत कृषि-प्रधान देश है। मकर संक्रांति के समय नया चावल और उड़द हर जगह सुलभ होता है और गांव के गरीब से गरीब लोग इन्हें सहज में प्राप्त कर लेते हैं। अतः चढ़ावा ऐसा ही भगवान को भी चढ़ना चाहिए, जिसकी प्राप्ति में कोई कठिनाई न हो। भगवान का भोजन भी आम आदमियों का भोजन होना चाहिए। खिचड़ी संक्रांति के नाम से भी यह पर्व जाना जाता है।

सारांश में यह कह सकते हैं कि समस्त हिन्दू जगत मकर संक्रांति को गंगा-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE 2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्नान करना अपना परम सौभाग्य समझता है और खिचड़ी का दान कर मंगलमय जीवन की कामना करता है। शिव का पूजन सर्वत्र किया जाता है, चाहे वह गोरखनाथ की पूजा के रूप में हो या पशुपति नाथ के रूप में या केदारनाथ के रूप में। इससे स्पष्ट लगता है कि यह पर्व शिव का पुण्य फलदायक दिन है।

मकर संक्रांति के दिन देश में अनेक स्थानों पर मेले लगते हैं। लोग मेलों में नाच-गान कर खुशी मनाते हैं। परन्तु जो आकर्षण, महत्त्व और विशेषता गोरखनाथ के प्रांगण (गोरखपुर) में मिलती है, उसके दर्शन अन्यत्र नहीं होते। कहते हैं, खिचड़ी के चढ़ावे के साथ मांगी गई हर मुराद पूरी होती है। गोरखनाथ का चमत्कार आज भी देखने-सुनने में आता है। लोगों का विश्वास है, वे खिचड़ी पर गोरखपुर में ही रहते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मोनपाओं की होली : 'टाशी'

मोनपा गीत है :

ला सिंगदे के स्नांग मिण्टुला,
ला दे जिलो वदी ओ-ओरीला ।
ला जिलो वदी रनो के सांग मिण्टुला,
ला दे जिक् तिन प्रंग पोरनो के संग मिण्टुला ॥

(भाव—जिलो ला (जिलो पहाड़) को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो सोई भूमि जाग गई है। वृक्षों पर रंग-बिरंगे फूल और हरी-हरी पत्तियां आ गई हैं। इन सजी-धजी डालियों पर पक्षी चहचहा रहे हैं। ऐसा जान पड़ता है कि धरती सज-संवरकर नृत्य करने लगी है।)

सचमुच, अरुणाचल के कामेंग डिवीजन की धरती बसन्त के शुभागमन पर रंग-बिरंगे फूलों की चादर ओढ़कर नाचने लगती है। थिरकती हुई धरती और खिलखिलाते हुए फूल जहां गले मिलते हैं वहां इस रमणीय धरती के निवासी 'टाशी' के रंगों में रंग कर एक-दूसरे के गले लगकर नाच-नाच कर समा बांध देते हैं।

'टाशी' प्रसिद्ध त्यौहार 'दावा दंगपू लोसेर' का अंग है। यह त्यौहार फरवरी/मार्च के शुक्ल पक्ष के आरम्भ से मनाया जाता है। बौद्ध धर्मावलम्बी मोनपा तथा शेरदुकपेन इस त्यौहार को बड़े उत्साह से मनाते हैं। वैसे यह त्यौहार विशेषकर मोनपाओं का चहेता त्यौहार है।

ये दोनों कबीले इस त्यौहार की तैयारी प्रायः एक माह पहले से करने लगते हैं। घरों की सफाई विशेष रूप से होती है। सामूहिक रूप से गम्पा (मन्दिर), सड़क आदि स्थानों की सफाई आदि का प्रबन्ध भी होता है। भोजन, लकड़ी आदि का पूरा प्रबन्ध पहले ही हो जाता है। 'लौसेर' के दिनों किसी से मांगना या काम करना बुरा समझा जाता है। हंसी-खुशी के इन दिनों का बड़ा महत्त्व है। आपसी प्रेम बढ़ाना, एकता से रहना, झगड़ा और आपसी मनमुटाव को 'टाशी' के रंगों से दूर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करना ही इस त्यौहार का मुख्य उद्देश्य है।

शुक्ल पक्ष के बाल इन्दु के साथ 'लौसेर' का आरम्भ होता है। पहले दिन, जो आदमी पानी के नाले के पास तड़के ही पहुंचता है उसे अत्यन्त भाग्यशाली समझा जाता है। नाले के पास पहुंचने वाला व्यक्ति धूप-दीप से पूजा करता है। प्रातःकाल 'कर्मजियर' (लामा) की पूजा के साथ त्यौहार दूसरे चरण में पहुंचता है। पूजा से पहले सभी व्रत रखते हैं। लामा के आशीर्वाद स्वरूप सबका भोजन 'थुक्पा' (चावल, मक्की आदि की पतली खिचड़ी) होता है।

खाने से निबटे नहीं कि गम्पा से 'डंग' (ढोल), 'भुपची' (तुर्री) की ध्वनि सुनाई पड़ती है। घर-घर से बच्चे, बूढ़े, जवान, नई-नई रंग-बिरंगी आकर्षक वेशभूषा में उधर ही उमड़ पड़ते हैं। हाथ से बनी हुई इन लोगों की पोशाकें अत्यन्त कलात्मक एवं आकर्षक होती हैं।

'गम्पा' से इनकी टोलियां गांव के खुले और रमणीय स्थान पर पहुंचती हैं। वहां आकर्षक नृत्य होते हैं। स्त्री-पुरुषों का सामूहिक नृत्य अत्यन्त दर्शनीय होता है। इनके नृत्य-नाट्य भी प्रसिद्ध हैं जिनमें 'आजिलामो' 'याक' नृत्य का अरुणाचल में विशेष आदर है। विभिन्न प्रकार के नृत्य, खेल और तीरन्दाजी के कौशल इस अवसर पर दिखाए जाते हैं। त्यौहार के आखिरी दिन विजयी दलों को 'गाम बूड़ा' (मुखिया) और लामा के द्वारा पुरस्कार भी दिया जाता है। नृत्यों में कलात्मक वस्त्र एवं चेहरे-मुहरों का प्रयोग होता है। इन लोगों के द्वारा बनाए हुए वस्त्र, गलीचे व चेहरे बहुत ऊंची कला के द्योतक हैं।

तीसरे पहर के बाद 'डंग', 'भुपची' के मधुर वातावरण में गाती हुई टोलियां गांव की ओर उमड़ पड़ती हैं। प्रत्येक घर के सामने इस टोली का सत्कार 'लौ-पानी' (मक्की की शराब) और 'आरा' (चावल की शराब) से किया जाता है। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति के साथ 'टाशी' की जाती है। एक प्रकार का आटा बनाया जाता है जिसमें मिठाई मिलाई जाती है। साथ ही कुछ आटे को अनेक रंगों का रूप दिया जाता है। रंगीन आटे को 'होली' के रंग की तरह मुंह पर मला जाता है। मीठे आटे को मुंह में डाला जाता है। होली की तरह सबसे गले लगकर मिलते हैं। स्त्री-पुरुष स्वच्छन्द होकर परस्पर रंग डालते हैं—एक-दूसरे को गले लगाते हैं। प्रत्येक घर में यही क्रम दिन-रात चलता है। युवक-युवतियों की टोलियां मस्त होकर नाचते-गाते, हंसते-खेलते, घूमते-फिरते और एक-दूसरे के ऊपर रंग डालती और गले लगकर मिलती हैं—यही 'टाशी' है। इस त्यौहार में 'टाशी' करना आवश्यक है। बड़े-बूढ़े भी इसमें युवक-युवतियों के समान भाग लेते हैं। बच्चों को विशेष प्रोत्साहन दिया जाता है। आठ-नौ दिन तक ऐसे ही क्रम चलता है। फिर पन्द्रहवें दिन बड़े जोर-शोर से इसी प्रकार का कार्यक्रम होता है। विजयी दलों को पुरस्कार दिया जाता है। नए साल के लिए अनेक शुभकामनाओं के साथ यह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

त्यौहार समाप्त होता है।

तवांग, दिरांग जोंग, बूमला, तामेंग और कलकटांग तक मोनपा कबीला है। ये स्वभाव से ही मधुर, मिलनसार एवं सरल व्यक्ति हैं। कला इनका जीवन है। अपने सीमित साधनों में भी सदा मस्त और प्रसन्न रहते हैं। इन्हीं के सदृश 'रूपा' से शेरगांव तक अल्प संख्या में शेरदुक्पेन कबीला भी बौद्ध धर्मावलम्बी है। शेरदुक्पेन अपने को मोनपाओं से श्रेष्ठ समझते हैं। इसका कारण यही है कि मोनपा सभी पशुओं को खा लेते हैं जबकि शेरदुक्पेन लोग स्वयं मरी हुई बकरी व जंगली हिरन के सिवाय अन्य किसी भी पशु को छूते तक नहीं हैं।

जहां तक संस्कृति का प्रश्न है—दोनों कबीले समान हैं। त्यौहार आदि मनाने का ढंग प्रायः एक-सा ही है। शेरदुक्पेन कुछ मात्रा में सुसंस्कृत अवश्य है। इसका मुख्य कारण सभ्य जगत से इनका सीधा सम्पर्क भी है। लेकिन कला की दृष्टि से मोनपाओं का स्तर अरुणाचल के सभी कबीलों में सबसे ऊंचा है। गढ़वाल-कुमाऊं के सीमावर्ती भोटिया जनजाति से मोनपाओं का मेल अधिक दीखता है। कालीन उद्योग से लेकर अन्य सभी कार्यकलापों में मोनपाओं का सीधा सम्बन्ध इन भोटिया जनजातियों से मिलता है। यहां तक कि खान-पान, रहन-सहन, बोली-भाषा, विवाह आदि रस्मों में भी समानता दिखाई देती है।

एकता और प्रेम को 'टाशी' में विशेष रूप से महत्त्व दिया जाता है। जिस सुन्दर घाटी से एक दिन दलाईलामा भारत में राजनीतिक शरण लेने आए थे, उसी घाटी से चीनी सैनिक वापस लौटे हैं। इन कबीलों का उन अत्याचारियों ने बहुत नुकसान किया है। फिर भी वे स्वच्छन्द हैं। मुझे 'शेरगांव' के गाम बूढ़े के शब्द याद आ रहे हैं, उन्होंने कहा—लौसेर पर आना बाबू। 'टाशी करूंगा'। आगे उसी ने कहा था—हम असली भारतवासी हैं—हमने महाभारत से लेकर आहोम राजा की लड़ाइयों में भाग लिया था। भारत हमारा देश है। इसकी शान हमारी शान है। 'टाशी' के त्यौहार पर हमें गले मिलने आना।

'टाशी' पर तो न जा सका, परन्तु विश्वास है कि मेरे दोस्त गाम बूढ़ा अपनी मण्डली के साथ 'देश-रक्षा' की होली (टाशी) खेलने के लिए सारे देश के साथ हैं, उन जैसे राष्ट्रप्रेमियों पर देश को अटूट विश्वास है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नये सन्दर्भों में दाम्पत्य : एक चिन्तन

आज का दाम्पत्य विघटन की दिशा में अग्रसर है। विघटन से मेरा तात्पर्य है कि आज पुराने मूल्य समाप्त होते जा रहे हैं और नये मूल्य जन्म ले रहे हैं। पुराने मूल्यों में सुख-शान्ति थी—नये मूल्यों में अशान्ति है। पुराने मूल्यों में जीवन को जीने की लालसा थी—आज नये मूल्यों में जीवन के सुख लूटने की चाह है। पुराने मूल्य घर, परिवार एवं बच्चों के लालन-पालन आदि के उत्तरदायित्वों से भरे थे, आज का मानव इन सबसे पलायन कर बैठा है। पुराने अर्थों में दाम्पत्य का जो 'मूल्य' था आज वह छितरा गया है—इसलिए विघटन है। आज (परमदूरा) सती सावित्री जैसी बात नहीं है और न नल-दमयन्ती, राम-सीता, रुरु-प्रमदूरा, देवयानी-ययाति, ऋतध्वज-मदालसा और भीम-हिडिम्बा जैसे ही दम्पति हैं। जिस रूप में भारतीय दम्पति को स्थान मिला था—वह स्थान डगमगा गया है। मनु के नियम थे कि "पुत्रार्थे क्रियते भार्या, पुत्रपिंड प्रयोजन!" अर्थात् प्रजा की उत्पत्ति ही दाम्पत्य धर्म का मुख्य उद्देश्य था। परन्तु आज पुत्र प्राप्त करना दाम्पत्य धर्म नहीं रहा। सन्तान तो आज के युग का अभिशाप है। परिवार नियोजन आज आवश्यक है। न मनु का तब का कथन बुरा था और न आज की बातें बुरी हैं। समय पर सब नियम भले लगते हैं। कभी पत्नी के लिए पति परमेश्वर के रूप में था तो आज वह केवल जीवन का साथी रह गया है। बल्कि विचार न मिले तो वह कुछ ही दिनों की मैत्री का रूप लेने लगा है। विवाह नाम की संस्था का भी आज स्थान अति गौण हो गया है।

आज का दाम्पत्य कहीं 'सामाजिक समझौता' है। कहीं 'मौन समझौता' है, कहीं 'बौद्धिक मित्रता' है तो कहीं केवल साथ रहते का ही स्वभावजन्य रूप है। कहीं दाम्पत्य में छिपे रूप का नया ढंग चलने लग गया है और नवीनता उसकी यह है कि 'दाम्पत्य' में उलझा ही न जाय। आज का युवक तथा युवती इस विषय में सोचना भी नहीं चाहते। बल्कि नयी शिक्षा ने आज के युवक समाज को यह बौद्धिक संवर्द्धन दिया है कि 'दाम्पत्य' के जाल में उलझने से व्यक्तिगत स्वतन्त्रता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समाप्त होती है। और जो उलझ गया, वह मकड़ी की तरह जाल में उलझा ही रहता है। अत: 'दाम्पत्य' से आज का नागरिक भय खाने लगा है। कुछ तो आर्थिक कारण भी हैं कि आज की महंगाई में परिवार की आर्थिक दशा को सुधारना और आर्थिक संकट में 'दाम्पत्य' जीवन को चलाना—असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया है। परन्तु आर्थिक कारणों का सहारा लेकर आज का भावी नागरिक उच्छृंखल होता जा रहा है।

दहेज प्रथा की विभीषिका ने भी दाम्पत्य जीवन के प्रति एक बहुत बड़ा प्रश्न-चिह्न लगा दिया है। आज अनेकों ऐसी दुर्घटनाएं हो रही हैं जिसके परिणाम-स्वरूप युवतियों में दाम्पत्य के प्रति विद्रोह उत्पन्न हो गया है। यह एक सामाजिक बुराई है।

'दाम्पत्य' जीवन में बंधने से आज जितना पढ़ा-लिखा वर्ग कतरा रहा है—उतना अनपढ़ वर्ग नहीं। गांवों में आज भी प्रत्येक नागरिक अपनी पुरानी लीक पर ही चल रहा है। आर्थिक संकट भी गांवों में अधिक है। शहरों में युवक तथा युवतियां नौकरी भी करते हैं, अन्य जीवनोपयोगी कार्यों में भाग लेते हैं, परन्तु विवाह सूत्र में बंधना नहीं चाहते। इस विषय में उनकी दलीलें यही होती हैं कि कौन बच्चों का भार मोल ले जबकि हम उतना नहीं कमा पाते जितना कि 'स्टैण्डर्ड' के लिए आवश्यक है। उधर युवतियों का विचार है कि पढ़-लिखकर क्यों दूसरों की गुलामी में रहा जाय? विवाह कर बच्चों के लालन-पालन में ही जीवन बीत जायेगा। दूसरे घर में अगर विचार न मिले तो जीवन नर्कमय हो जायेगा। दहेज कहां से दें और फिर अपनी हत्या क्यों करायें? जब पढ़-लिख लिया है तो यों ही चूल्हे-चक्की के फेर में क्यों पड़ा जाय? उधर युवक वर्ग का दृष्टिकोण भी यह है कि क्यों विवाह को गले की रस्सी की तरह स्वीकार किया जाय? अर्थात् 'दाम्पत्य' सूत्र आज अनिच्छा का विषय अवश्य बन गया है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या 'दाम्पत्य' के सूत्र में न रहने से अन्य आवश्यकीय आवश्यकताएं पूर्ण हो जाती हैं?

वैसे दाम्पत्य जीवन में वंश-परम्परा, सेक्स और आत्मीयता का होना माना गया है। वंश-परम्परा के बोझ से दबने के लिए आज का युवक-युवती वर्ग तैयार नहीं है। आत्मीयता तभी अधिक रह सकती है जबकि घर हो। एक-दूसरे के सुख-दुख के भागी सभी रह सकें। जहां तक 'सेक्स' का सवाल है, यह प्राणीशास्त्रीय आवश्यकता भी है। इसकी सन्तुष्टि के लिए आज का युवक-युवती वर्ग मित्रता में विश्वास रखता है। 'मित्रता' के बहाने 'सेक्स' को अपनाने की बड़ी अच्छी और सरल विधि आज के युवक वर्ग के पास है। शारीरिक सम्बन्धों के बढ़ जाने पर आधुनिक औषधियां उनके मार्ग में फूल बिछाती हैं। न बच्चों का बोझ और न दाम्पत्य का ढकोसला, और न कुटम्ब का कलह, और न ही किसी की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गुलामी, और न 'स्टैण्डर्ड' बनाये रखने की समस्या, और न ही स्वतन्त्रता में बाधा ।

कुछ लोग यह प्रचार करते हैं कि 'सेक्स' जैसी बात कुछ लोगों में ही है। परन्तु मनोविज्ञान इस बात को स्वीकार करता है कि प्रत्येक पुरुष, बहुस्त्री की चाह करने वाला होता है और प्रत्येक स्त्री, बहुपुरुष-सहवास की इच्छा रखती है। सामाजिक बन्धन और समय एवं वातावरण ही ऐसे बन्धन हैं जो पुरुष तथा स्त्री के ऐसे विचारों पर अंकुश रखते हैं—अन्यथा इस सच्चाई की आंखों देखी तस्वीर चारों तरफ देखने को मिलती । फिर आज का उच्छृंखल कहलाने वाला युवक वर्ग ऐसा नहीं कर रहा है तो फिर क्या है? एक से बंधे रहने की भावना आज नहीं है। अनैतिक मार्गों का अनुसरण प्रतिदिन किया जा रहा है। अनैतिक शब्द का व्यवहार भी आज हट गया है। कारण कि आज का समाज जो बन रहा है, वह नैतिक मूल्यों से विद्रोह कर बैठा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि निकट भविष्य में नैतिक मूल्य भी बदल जायेंगे ।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। आज का साहित्य आज के समाज का प्रतिबिम्ब है। आज के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें मनुष्य की मनोदशा तथा मनोविज्ञान का भी सच्चा प्रतिबिम्ब होता है। एक मनोवैज्ञानिक ने अपनी खोज से नीचे लिखे तथ्य सामने रखे। उसका कथन है कि उसने एक अपनी परिचित परिवार की स्त्री से जब यह पूछा कि आप जो नित्य अपने पति के कुशल-मंगल की कामना करती हैं, व्रत रखती हैं, और वैसे दिन-रात आपका झगड़ा रहता है। इस पर उस महिला का उत्तर था—"मैं व्रत इसलिए रखती हूं कि ऐसा पति फिर कभी भी और किसी भी जन्म में न मिले।" बनारस की शोध रिपोर्ट का निर्णय है कि सौ में से 75 स्त्रियों को 'सेक्स' का पता न था और न वे 'सेक्स' के परमानन्द को ही कुछ समझती थीं। वैसे उनके बच्चे भी थे, परिवार भी था। जब उनसे 'दाम्पत्य' के विषय में पूछा गया तो उन्होंने कहा कि निभाना तो है ही। एक आश्चर्यजनक घटना यों घटी कि एक अति पति-परायणा धार्मिक स्त्री जो पति के चरणों की धूल माथे पर लगाये बिना जल भी नहीं ग्रहण करती थी, वह अपने अन्तरंग मित्र के पास कामेच्छा को लेकर सहवास के लिए पहुंची तो उस मित्र ने आश्चर्य से पूछा कि तुम तो पति-परायण स्त्री हो? स्त्री का जवाब था—वह तो मैं अब भी हूं। जिसको मेरा पति नहीं दे सकता उसे चाहने आई हूं—इसमें क्या दोष है? अभी-अभी की एक घटना है कि एक ग्रेजुएट सभ्य युवती, जो एक प्रोफेसर की पत्नी थी, अपने नौकर के साथ भाग गई। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनसे कुछ सोचने को विवश होना पड़ता है। स्पष्ट है—यदि ऐसी भावनायें मूलरूप में विद्यमान हैं तो उनका नैतिक मूल्य क्या होना चाहिए? ऐसी दशा में आधुनिक युवक-युवतियों का स्वेच्छापूर्ण आचरण क्या ठीक है? यदि ठीक है तो अना-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चार नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। अगर ठीक नहीं है तो उपयुक्त क्या है? इसका हल ढूंढ़ना चाहिए।

'दाम्पत्य' का जहां तक प्रश्न है, उसमें अनेक प्रयोग समय-समय पर हुए हैं। कभी पुरुष ने स्त्री को उच्च स्थान दिया, यहां तक कि उसकी पूजा तक की (यत्र नार्यस्तुपूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता)। बाल्मीकि की सीता ने भी एक बार राम से कहा कि पत्नी, "देवि, मां, सहचरी, प्राण और सब कुछ है।" महाभारत में भी अनेक प्रयोग हुए हैं। स्वयं कुन्ती को अपनी वासना की पूर्ति हेतु देवताओं को बुलाना पड़ा। द्रौपदी का पहले कर्ण के प्रति आकर्षित होना फिर कृष्ण के प्रति प्रेम और पांचों की भोग्या होने का उल्लेख सर्वविदित है। द्रौपदी एक साथ प्रिया, दर्शनीया, पतिव्रता, पंडिता हैं। बहुपत्नित्व के उदाहरण महाभारत में स्वयं कृष्ण, अर्जुन, भीम, दुर्योधन आदि अनेक हैं। बहुपत्नित्व की बात भी मिलती है जिनमें सारे कुल से विवाह करने (आप स्तम्ब सूत्र : द्वितीय अध्याय, 27, 3—4) की 'कुले कन्या प्रदान' वाली बात आयी है। उधर पुत्र प्राप्ति के न होने पर महाभारत में 'नियोग' प्रथा का भी विधान था। मनु ने भी इस प्रथा की (श्लोक 9, 59-68 में)। विष्णु तथा नारद ने भी 'नियोग' के लिए सीमित अनुमति दी है। याज्ञवल्क्य ने भी अपनी स्मृति में इसका उल्लेख किया है। बौद्धकालीन जातकों में भी 'दाम्पत्य' के अनेक प्रयोग किये गये। 'कोसिय' जातक (130) में पति के होते हुए पत्नी का प्रेम अपने मित्र से अधिक दिखाया गया है। 'सुजाता' जातक (269) में बधक भार्या, चोर भार्या, अरिया भार्या, माता भार्या, भगिनि भार्या, सखी भार्या और दासी भार्या का उल्लेख है। वैसे दाम्पत्य जीवन का मूलाधार प्रकृति-पुरुष का संयोग ही मुख्य बताया गया है। अतः 'दाम्पत्य' सुख लूटने के लिए अनेक विधि-विधान बताये गये हैं। चाणक्य के अर्थशास्त्र में भी अनेक सुन्दर विवरण मिलते हैं। परन्तु गणिका धर्म को उन्होंने मुख्य बताया। बल्कि 'दाम्पत्य' सुख को सफल बनाने के लिए गणिकाओं से 'सेक्स' की शिक्षा मिलती थी। इस प्रकार प्रत्येक युग में कुछ न कुछ प्रयोग हुए हैं। 'दाम्पत्य' पर अनेक बार नयी दृष्टि डाली गई है।

आज के संसार में यूरोप का प्रभाव अधिक पड़ा है और यूरोपीय ढंग को अपनाकर ही आज 'दाम्पत्य' का मूल्यांकन होने लगा है। इसलिए हम 17वीं व 18वीं सदी के फ्रांस में प्रयोगों पर सबसे पहले विचार करेंगे। उस समय पति-पत्नी का सम्बन्ध हृदय न होकर बुद्धि के द्वारा माना गया। पत्नी के ऊपर यौन सम्बन्धों पर शक करना और बुरा व्यवहार करना निन्दनीय समझा गया। इसका परिणाम यह हुआ कि कुमारियों ने धनी बूढ़ों से प्रणय या विवाह करना और युवकों ने धनी विधवाओं से विवाह करना अपना कर्त्तव्य-सा बना लिया था। पति से निष्ठा रखते हुए भी पत्नी शारीरिक सम्बन्धों में स्वतन्त्र थी।

बीच में एक मोड़ दिया था इब्सन ने। 'इब्सन' के नाटक (डाल्स हाउस) में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नोरा ऐसी नायिका है जो अपने पति की प्यारी है। पति बीमार पड़ जाता है। नोरा मेहनत कर घर चलाती है। पति के पूछने पर वह कहती है कि उसके पिता मदद कर रहे हैं। पति को जब पता चलता है कि उसकी पत्नी कहीं काम करती है तो उसके मन में शंका उत्पन्न होती है। वह नोरा को अपने से व बच्चों से अलग कर देता है। फल यह हुआ कि नोरा पति के घर को छोड़कर संसार में स्वतन्त्र जीवन बिताने चल देती है। यूरोप की नारी को इस चरित्र से नया मोड़ मिला था। उधर मॉं के नाटकों ने रूमानी दिशा को हटाने का प्रयत्न किया, पर सब व्यर्थ सिद्ध हुआ।

व्यावहारिक जीवन में भौतिकवाद, सौन्दर्य और भोग की प्रसाधन सामग्री ज्यों-ज्यों वढ़ती गई त्यों-त्यों नारी केवल भोग्या ही बनती गई और आज 'फ्राइड' का मनोविज्ञान आधुनिक लोगों का धर्मशास्त्र बन गया है। मनोविज्ञान से कई नयी चीजें भी सामने आयी हैं। कई रोगों का उपचार भी हुआ है। वैसे इस युग में श्रीमती डॉ० लैसलि कैम्पेल ने जोर की आवाज उठाई है कि बिवाह करने की आवश्यकता नहीं है, उसके बिना भी जीवन पूर्ण हो सकता है। इसके लिए उन्होंने सुकरात, अरस्तू, पास्तूर, गैलिलियो और आइन्सटाइन का उदाहरण दिया है कि इनके जीवन में विवाह का कोई महत्त्व नहीं रहा। परन्तु यह कहना कहां तक ठीक रहेगा कि यौन भावना इनमें थी ही नहीं। श्रीमती कैम्पेल इस बात को भी सिद्ध नहीं कर सकीं कि इन महापुरुषों ने 'काम-वासना' को सन्तुष्ट नहीं किया। मनोवैज्ञानिकों का तो यहां तक कहना है कि आदमी, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री हो, इस आवश्यक आवश्यकता से कभी नहीं बच सकता। यहां तक देखा गया है कि जो लोग विधुर होते हैं वे बहुधा दूसरे की चारित्रिक बातें ही अधिक करते हैं। दूसरे लोगों पर वे अपना प्रभाव इस प्रकार डालना चाहते हैं कि मानो वे यौन भावना को जानते ही न हों, परन्तु उनमें वह भावना ईर्ष्या के रूप में मिलती है। वे बातों में ही उस इच्छा को प्रकट करते हैं। यही बात विधवा या कुमारी रहने वाली स्त्रियों में भी पायी जाती है। ऐसी स्त्रियां प्रायः पुरुषों के साथ अधिक बात करती हुई या हंसी-मजाक करती हुई पायी जाती हैं। वे स्त्रियां जो पुरुषों का साथ पाने में असफल रहती हैं या उन्हें अधिक शर्म आती है, तो उन्हें भूल जाने की या सिर-दर्द की बीमारी लग जाती है। 'यौन' कुण्ठा उनमें अधिक होती है।

आधुनिक हिन्दी-साहित्य भी इस परम्परा को अक्षरशः चित्रित करने में सफल हुआ है। आजन्म अविवाहित रहने वाले छायावादी कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त भी इस यौन कुण्ठा से न बच सके। उनकी कुण्ठा इतनी व्यापक है कि प्रकृति में भी उनको केवल नारी रूप ही दिखाई दिया। उधर महादेवी वर्मा का दुःखवादी काव्य पुरुषेच्छा के लिए तड़पता रहा और वह केवल उनकी अपनी ही कुण्ठा है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

छायावादी, रहस्यवादी चोला पहनाने का तो केवल प्रयत्न मात्र है। अगर साहित्य समाज का दर्पण है तो उसमें अभिव्यक्त भावना भी समाज में जीने वाले कवि की ही होनी चाहिए। यदि यह सच है तो आधुनिक मध्यकालीन रीतिकाव्य कुण्ठा का काव्य है। यौन भावना की प्रबल ज्योति जगाने वाला काव्य है—जिसमें केवल असन्तुष्टि के लिए ताक-झांक की गई है। अत: इस आवश्यक जीवकीय भावना से भी मानव अपने को अलग नहीं कर पाया है तो उससे प्राप्त आवश्यकीय सुख से वह वंचित कैसे रह सकता है। केवल प्रपंच कर यह कह सकता है कि मुझमें कामेच्छा नहीं, परन्तु प्रकृति के नियम से कौन, कब और कैसे मुंह मोड़ सकता है।

सबसे पहले सामाजिक उपन्यासों में यह बात दिखाई दी थी कि मानवीय इच्छाओं को रोकना असम्भव है। परन्तु जैनेन्द्र ने सबसे पहले (1937) में 'सुनीता' द्वारा नारी हृदय की छलना भावना को सच्चे अर्थ में प्रस्तुत किया था। श्रीकान्त ने हरिप्रसन्न को अपने घर बुलाया था, केवल इसलिए कि वह सुनीता को सब कुछ नहीं दे सकता (?) था। प्रेमचन्द ने भी गोदान में एक नायिका को सामने रखा है, जो केवल दूसरों को छलती है, परन्तु स्वयं हार जाती है। उधर जैनेन्द्र की 'मृणाल' भी ऐसी ही अवस्था में है। ऐसे चित्रों के बीच आता है बहु-चर्चित भगवती बाबू का उपन्यास 'चित्रलेखा'। चित्रलेखा सब कुछ सहन करती है परन्तु विधवा होने पर भी वह अपनी आत्मा की पुकार सहने में असमर्थ है। युवक के प्रेमपाश में बंध जाती है। फिर उसके रूप-जाल में पाटलीपुत्र का बीज-गुप्त और संन्यासी तक डगमगा गये थे। वह क्या आकर्षण था? क्या उस स्त्री का वह भोग्या रूप न था? आये दिन प्रेमचन्द के गोदान गबन, प्रेमाश्रम, सेवा-सदन और कर्मभूमि आदि के नायक एवं नायिकायें मिलते ही रहते हैं। और तो और विश्व-विख्यात उपन्यास-सम्राट टॉलस्टाय के प्रसिद्ध उपन्यास 'युद्ध और शांति' तथा 'अन्ना करनिना' में भी वही समस्या है। यह समस्या नहीं बल्कि विश्व-सत्य है। पुरुष प्रकृति का चिरन्तन सम्बन्ध! अब प्रश्न केवल यह रह जाता है कि इस यौन सम्बन्ध को किस रूप में स्वीकारा जाए? समाजशास्त्री शोध में जुटे हैं। निष्कर्ष नहीं मिलता।

निष्कर्ष न मिलने का कारण यह भी है कि 'दाम्पत्य' को सभी स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं। अनेक पारखियों का कहना है कि विवाह से पहले जो उमंग होती है, वह उसके बाद ही नष्ट हो जाती है। विवाह के बाद ही पति-पत्नी के बीच पारस्परिक उदासीनता के बीज पड़ जाते हैं। बाहर से प्रेम का लेप चाहे कितना ही क्यों न चढ़ाया जाय, परन्तु भीतर ही भीतर परस्पर खीझ, अवज्ञा, ऊब, ईर्ष्या और कटुता बढ़ती जाती है। ज्यों-ज्यों परिचय बढ़ता जाता है त्यों-त्यों उबास बढ़ती जाती है। तब केवल निभाने वाली बात रह जाती है।

ऐसी बात नहीं है कि सभी का 'दाम्पत्य' बुरा होता है और सभी जगह यौन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विकृति पायी जाती है। परन्तु जब आये दिन घर टूटते हुए दिखाई देते हैं, विवाह के कुछ ही दिन बाद तलाक तक की बातें होने लगती हैं, 'दाम्पत्य' जीवन में अनेक बातें उभड़ने लगती हैं, तो सोचने के लिए विवश होना ही पड़ता है कि 'दाम्पत्य' का क्या होगा ? अगर यही दशा रही तो भावी नागरिकों का जीवन कैसा होगा ? माता-पिता के कलह में पले बच्चे का भविष्य कैसे ढलेगा ? तब का नागरिक, देश का कैसा जीव होगा ?

अतः आज समाज के सामने, देश के कर्णधारों के सामने, समाजशास्त्रियों के सामने यह एक ऐसा प्रश्नचिह्न है जिसका उत्तर पाना आवश्यक ही नहीं वरन् परमावश्यक है। नैतिक मूल्यों को आज के जीवन में इस प्रकार ढालना होगा जिससे 'दाम्पत्य' जैसी भावना से नवयुवक समाज मुख न मोड़े। बीसवीं सदी की पुकार पर भी ध्यान देना ही होगा कि आधुनिक दम्पति को स्वच्छन्द एवं स्वतन्त्र वातावरण मिल सके। यदि इस समस्या पर विचार न किया गया तो चीन की तरह 'दाम्पत्य' जैसी बात समाप्त ही हो जायेगी, फिर भारत जैसे देश का क्या होगा, यह देखना-सुनना अजीब लगेगा।

नया युग आया है तो नये मूल्य भी बनने ही चाहिए। नये मूल्यों में 'दाम्पत्य' का पुराना ढर्रा बदलना ही चाहिए। यौन स्वच्छन्दता पर नये ढंग से रोक लगनी ही चाहिए। यदि ऐसा न हुआ तो 'दम्पति' धर्म के टूटने पर घर, घर से परिवार, परिवार से गांव, गांव से शहर और शहर से देश ही टूट जायेगा। अतः इस नये प्रश्न को मुख्य रूप से लेना ही चाहिए। नैतिक मूल्यों में समन्वय भावना आनी चाहिए, ताकि समाज में नयी व्यवस्था बने। नया सर्वोदयी विकास सम्भव हो सके। देश का सन्तुलित विकास हो सके और यह सब सफल 'दाम्पत्य' के ऊपर ही निर्भर करता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गढ़वाल में महाभारतकालीन चरित्र नायकों को दवता रूप में मान्यता

'महाभारत', भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का सनातन तथा पवित्र कोश है। भारतीय संस्कृति के प्रतिपादक ग्रंथों में इसका सर्वोपरि स्थान है। विश्व के महाकाव्यों में सबसे बड़ा और ज्ञानवर्द्धक यही महाकाव्य है। यह एक साथ राजनीतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, नैतिक तथा दार्शनिक विचारों का अद्‌भुत भंडार है। इस ग्रंथ में मानव जीवन की सभी प्रकार की समस्याओं के समाधान का सरल और वास्तविक मार्ग दिखाया गया है। विश्व की विभिन्न संस्कृतियों को इस ग्रंथ ने सोचने और विचारने का संस्कार दिया है। आज स्थिति यह है कि शायद ही संसार का कोई देश, भाषा या साहित्य ऐसा होगा जिसमें महाभारत अथवा गीता का उल्लेख न किया गया हो। यही नहीं, महाभारत का संसार के कई देशों में इतना अधिक आदर हुआ है कि वहां की संस्कृति ने उसको अपने आप में पूर्णतः रचा-पचा लिया है। यही एकमात्र कारण है कि उन देशों की संस्कृति एवं सभ्यता में आज भी महाभारतकालीन जीवन की स्पष्ट झलक देखने को मिल जाती है।

भारत का तो यह अपना प्रेरणास्पद ग्रंथ है। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का समन्वय अति कुशलता से हुआ मिलता है। कर्म के प्रति आस्था और फिर जीवन के प्रति जिजीविषा इसकी विशिष्ट मौलिकता है। भारत के कोने-कोने में महाभारत की अमिट छाप है। भारत की सभी क्षेत्रीय भाषाओं में महाभारत का अनुवाद मिलता है। किसी-किसी भारतीय भाषा में तो महाभारत की कथा का अपना ही निराला ढंग मिलता है। वास्तविकता यही है कि सम्पूर्ण देश में महाभारतकालीन जन-जीवन की स्पष्ट छाप किसी न किसी रूप में दिखाई देती है। यही कारण है कि महाभारत को भारत से कभी भी अलग-थलग नहीं देखा जा सकता है, क्योंकि यही एक ऐसा ग्रंथ है जिसने रामायण के बाद भारतीय जन-जीवन को सर्वाधिक प्रभावित किया है। 'रामायण' और 'महाभारत' ही ऐसे दो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महाकाव्य हैं जिनके कारण भारतीय संस्कृति, जीवन्त संस्कृति बन पाई है। दोनों के सम्मिलित एवं समन्वित जीवन-दर्शन ने भारतीय जन-जीवन को सांस्कृतिक रूप में बांधा है।

फिर भी इन दोनों महाकाव्यों के अपने-अपने विशिष्ट प्रभाव वाले क्षेत्र बन गये हैं। 'रामायण' का अपना विशिष्ट अंचल उत्तर प्रदेश का अवधी, भोजपुरी, कन्नौजी और बुंदेली बोली (भाषा) बोलने वाला क्षेत्र हो गया है। जबकि महाभारत का विशिष्ट अंचल—समस्त पर्वतांचल, मेरठ, हरियाणा, पंजाब और दिल्ली वाला क्षेत्र है। इन अंचलों की विशिष्टता यह है कि इनमें आज भी वैसा ही जन-जीवन मिलता है जिस प्रकार का जीवन तत्कालीन समय में उस समय के लोगों ने जिया था।

समय की गति ने समाज के चिंतन को थोड़ा-बहुत बदला है। रीति-नीति में परिवर्तन आया है। रहन-सहन, खान-पान में पर्याप्त अंतर आ गया है। परंतु, पर्वतांचल के कुछ क्षेत्र हैं जिनकी सोच में कोई विशेष अंतर नहीं आया है। उनके जीवन में महाभारतकालीन चरित्र नायक एवं नायिकाओं का विशेष प्रभाव आज भी दिखाई देता है। यों तो कश्मीर से लेकर मणिपुर, इम्फाल तक महाभारतकालीन चरित्र नायकों का असर दिखाई देता है, परंतु हिमांचल प्रदेश से कुमाऊं-गढ़वाल क्षेत्र में इनका अधिक आदर हुआ है बल्कि यों कहना चाहिए कि इन चरित्र नायकों का इस क्षेत्र में अधिक सम्पर्क रहा है। इसीलिए इन क्षेत्रों में महाभारतकालीन समाज की विशिष्ट छाप दिखाई देती है। गढ़वाली समाज पर इसकी इतनी गहरी छाप पड़ी है कि वहां के लोगों ने इन्हें देवता रूप में पूजना आरम्भ कर दिया है। वहां के लोकनृत्यात्मक गीतों में इनका विस्तार से वर्णन है।

गढ़वाल के देवता

गढ़वाल-कुमाऊं में देव-पूजा की प्राचीन पद्धति मिलती है। वैदिक कालीन देवताओं की पूजा करने की यहां पुरानी परम्परा है। सूर्य, अग्नि, वायु, वरुण और यम आदि वैदिक देवताओं की केवल कर्मकाण्ड के द्वारा बताये गये नियमों के अनुसार पूजा-अर्चना की जाती है; परंतु यहां अन्य देवताओं की भी पूजा की जाती है। आर्यों ने पुराण काल में आकर जैसे राम, कृष्ण, शिव, गणेश, देवी आदि शक्तियों को देवता रूप में स्वीकार किया, उसी तरह गढ़वाल के लोगों ने भी इन्हें स्वीकार कर अपने अनुकूल रंग में रंग दिया। यही कारण है कि यहां (गढ़वाल में) रघुनाथ (राम), नागर्जा या नागराजा (कृष्ण) विनसर, निरंकार अथवा भांसर (शिव), काली (पार्वती) के रूप में उनको स्थानीय पद्धति के अनुकूल अपने अंग पर उतार कर नचाया जाता है। इस तरह यदि बारीकी से देखें तो गढ़वाल में दो प्रकार के देवता हैं। एक, शास्त्रधर्म से सम्बन्धित देवता और दूसरे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लोकधर्म से सम्बन्धित देवता। शास्त्र-धर्म-सम्बन्धी देवताओं को लोकधर्म में सम्मिलित करने का प्रयास अवश्य किया गया, परंतु उनका स्वतंत्र अस्तित्व कभी भी समाप्त नहीं हुआ। इनमें विघ्नहर गणेश की मान्यता सदैव निर्विवाद रही। लेकिन गढ़वाल के जन-जीवन में शिव और कृष्ण को विशेष आदर मिला। शिव की तो यह अपनी ही भूमि थी। परन्तु कृष्ण का भी इस भूमि से विशेष लगाव रहा है। गढ़वाल के लोकगीतों के अनुसार कृष्ण अपने जीवन के अंतिम दिनों में सेम-मुखेम आकर रहने लगे थे। यह कोई असम्भव घटना भी नहीं कही जा सकती क्योंकि 'हरिवंश पुराण' (2/61/11-17) के आधार पर पुत्र-प्राप्ति हेतु कृष्ण का बदरिकाश्रम आना सिद्ध होता है। 'देवी भागवत' (4/25) और 'महाभारत' (वनपर्व 2/12/35 और 12/11) में भी कृष्ण का यहां आकर तप करने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। रुक्मिणी के गर्भ से प्रद्युम्न का जन्म उसी तप का फल था। इसीलिए गंगा जी को 'प्रद्युम्नस्यैक जननी' कहा गया है। 'भागवत' तथा 'विष्णु पुराण' में यदुवंश के पतन के बाद कृष्ण ने इस क्षेत्र को पवित्रतम बताते हुए अपने प्रिय सखा उद्धव को बदरिकाश्रम जाने को कहा था।[1] 'उद्धव चौंरी' के नाम से आज भी उनकी स्मृति बदरिकाश्रम में सुरक्षित है।

महाभारत और पुराणों में वर्णित कृष्ण के चर्चित जीवनवृत्त से अधिक उनका इस क्षेत्र में 'नागर्जा' (नागराजा) के रूप में सम्मान है। एक 'जागर' के अनुसार उन्हें (कृष्ण को) नागवंशी कहा गया है। उनकी वंशावली में अभीनाग, फणीनाग, सिसरनाग, विसरनाग, तत्कीनाग और वासुकी नाग (कृष्ण के पिता) के नाम गिनाये जाते हैं। श्रीकृष्ण की एक बहिन एकानसा को 'हरिवंशपुराण' (2-4/101/11-18) में नाग कन्या कहा गया है। कृष्ण के बड़े भाई बलदेव को शेषनाग का अवतार माना गया है। इसी तरह उनके देहावसान के समय 'महाभारत' (मौसल पर्व 4/13/11) में उल्लेख है कि अनेक नाग उनके दर्शनार्थ आये थे। इसके अलावा भी कई ऐसे 'जागर' हैं जिनसे 'महाभारत' के कथानक में लोकपक्ष ने अनेक रोचक प्रसंग जोड़ दिए हैं। उनमें 'रुक्मिणी हरण', 'चंद्रावली हरण', 'कुसुमा कोलिन', 'गंगूरमोला' और 'सूजू की सुनारी' सम्बन्धी गाथाएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

देवी-देवताओं से सम्बन्धित लोकगीतों को सामान्यतः 'जागर' गीतों के नाम

---

1. गच्छोद्धव मयादिष्टो बदर्य्याख्यं ममाश्रमम्।
तपश्चरतु तीर्थोदे स्नानोपस्पर्शनैः शुचिः ॥ (भागवत)
× × ×
यद्वदर्याश्रम पुण्यं गंधमादन पर्वते।
नर नारायण स्नाने तत्पवित्रं महीतले ॥ (विष्णु पुराण)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से जाना जाता है। ये गीत कथात्मक होते हैं। परन्तु कुछ मुक्तक रूप में भी पाये जाते हैं। भक्ति के ये गीत एक प्रकार के 'महाकाव्य' और 'मुक्तक काव्य' हैं। इन गीतों को 'जागरी' अथवा 'घड़याल्या' (गायक-वादक) डौंर-थाली (डमरू-थाली) बजाकर, 'आवजी' (देवदास-शिल्पकार) ढोल-दमामा बजाकर और 'हुड़क्या', हुड़का बजाकर गाता जाता है। गढ़वाल-कुमाऊं में देवता नचाने की प्रथा है।

देवी-देवताओं के अलावा कृष्ण और पांडवों के भी 'जागर गीत' हैं। संस्कृत का शुद्ध शब्द 'जागर' है। महाभारत के जागरपर्व प्रसंग और कालिदास के रघुवंश (रात्रि जागर परो दिवाशय: 9/34) में इसका उल्लेख है। रात्रि-भर जागकर अथवा किसी 'माध्यम' के ऊपर दैवी शक्ति को जागृत करने हेतु जो गीत गाये जाते हैं—उन्हें 'जागर' गीत कहा जाता है।

गढ़वाल में देवी-देवताओं के बाद कृष्ण और पांडवों के ही 'जागर' लगते हैं। ये 'जागर गीत' मुख्यत: नृत्यात्मक गीत होते हैं। 'जागरी पुरोहित' अथवा आवजी वादक जब जागर गीत शुरू करता है तो पहले भूमि देवता, इष्ट देवता, ग्राम देवता का आह्वान करता है और फिर उस देवता विशेष का आह्वान करता है जिसको 'जागर' लगाने हेतु उसे आमंत्रित किया गया है।

प्रत्येक देवी अथवा देवता या कृष्ण अथवा पांडवों के अपने-अपने 'पस्वा' 'औतारु', 'बक्या' या 'माली' होते हैं। यह वह व्यक्ति होता है जिस पर 'जागर' लगने पर देवी, देवता, कृष्ण तथा पांडव आकर नाचने लगता है। जब 'जागरी पुरोहित', औजी (आवजी) अथवा किसी देवी-देवता अथवा पांडवों का 'जागर' पूजन के बाद उसकी यशगाथा गा-बजाकर सुनाने लगता है तो उस देवता विशेष का 'पस्वा' अथवा 'औतारु' पर दैविक कम्पन होने लगता है। जैसे जागरी पुरोहित डौंर-थाली बजाकर या औजी ढोल दमाऊं बजाकर अथवा हुड़क्या 'हुड़क' बजाकर गीत को गाता जाता है—वैसे-वैसे 'पस्वा' (औतारु या माली) नृत्य करता जाता है। यह क्रम कई दिनों तक हर रात्रि में चलता रहता है।

'जागर' के ऐसे लोकनृत्य गीतों में धार्मिक या दैवी भावना निश्चित रूप से पाई जाती है। कृष्ण तो विष्णु भगवान के अवतार थे। उनके जागर गीत तो गढ़वाली लोक के चहेते गीत हैं। अत: कृष्ण सम्बन्धी लोक नृत्यात्मक 'जागरों' का रसास्वादन करना अवश्य प्रतीत होता है।

नागजां (नागराजा-कृष्ण)[1]

नागजां (नागराजा) गढ़वाल का प्रमुख देवता है। कृष्ण को ही नागराजा

---

1. डॉ० शिवानन्द नौटियाल—गढ़वाल के लोक नृत्यगीत (हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रकाशन) इलाहाबाद, पृ० 786-87 से साभार उद्धृत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के रूप में पूजा जाता है और उसकी यशस्वी गाथाओं के आधार पर मनोरंजक नृत्य सम्पन्न किया जाता है।

कृष्ण गढ़वाली जन-जीवन पर पूणत: छाये हुए मिलते हैं। पशुधन के ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाले एकमात्र देवता के रूप में भी कृष्ण की गढ़वाल के प्रत्येक गांव में पूजा होती है। जब किसी परिवार की छानी में कोई गाय या भैंस ब्याती है, तो उसका दूध स्वयं पीने से पहले नागराजा को चढ़ाया जाता है। गांव के जलाशय के समीप किसी ओट वाले स्थान पर नागराजा का स्थान नियत रहता है। उस स्थान पर बच्चा देने वाले पशु के गोबर से एक तालाब-सा बनाया जाता है। उसमें उस पशु का दूध भर दिया जाता है और फिर पूजन धूप-दीप से किया जाता है। नागराजा से प्रार्थना की जाती है कि वह उस पशु पर कृपा रखे, जिससे वह अत्यधिक दुधारू रहे। गढ़वाल में इसको 'बालण देवता' भी कहते हैं और इस अवसर पर जो नागराजा की पुजा होती है उसे 'रैक' कहते हैं। प्रसाद रूप में 'रोट' का प्रसाद बांटा जाता है। नागर्जा के जागर में कृष्ण का अलौकिक स्वरूप उतना उजागर होकर नहीं आया है, जितना लौकिक गढ़वाल के ग्रामीण-जीवन से उनके इस लौकिक जीवन का एकाकार हुआ मिलता है। कृष्ण के विषय में कई गीत मिलते हैं। एक गीत में कहा गया है कि जब कृष्ण का मन द्वारिका से ऊब गया तो उन्होंने गढ़वाल के सीमा-मुखेम को अपने निवास के लिए चुना। गंगू रमोला उस प्रदेश (रमोली) का राजा था। उसने कृष्ण को यहां बसने की आज्ञा नहीं दी। उसी समय उस क्षेत्र में एक राक्षसी का आतंक फैला हुआ था। कृष्ण ने उस राक्षसी को मार डाला। गंगू रमोला इस घटना से अत्यधिक प्रभावित हुआ और उसने कृष्ण को अपना इष्ट मान लिया तथा उसका भक्त हो गया। गंगू रमोला का पुत्र सिद्धा, कृष्ण का परम मित्र था। सिद्धा, तांत्रिक विद्या में भी निपुण था। कृष्ण को जब कभी शारीरिक और तांत्रिक बल की आवश्यकता होती थी तो वे सिद्धा को याद करते थे। कृष्ण के जागर के साथ सिद्धा का जागर भी लगता है और वह भी साथ ही नाचता है। कृष्ण के जागर में उनकी कई प्रणय-लीलाओं का वर्णन मिलता है। गढ़वाल के इन जागरों में राधा की अपेक्षा रुक्मिणी, चंद्रावली और सत्यभामा को अधिक महत्त्व मिला है। इन प्रणय-गाथाओं के अलावा कृष्ण की रसिकता की दो गाथाएं 'कुसुमा कोलिन' और 'सूजू की सोनारी' भी गढ़वाल के जागरों में मिलती हैं।

गढ़वाल के एक जागर के अनुसार कृष्ण को नागवंशी कहा गया है। 'हिमालय की लोक-कथाएं' नामक पुस्तक में भी तारादत्त गैरोला और ई० एस० ओकले ने नागवंश की वंशावली इस प्रकार दी है—

अमीनाग, फणीनाग, सिसरनाग, विसरनाग, ततकीनाग और वासुकीनाग (कृष्ण जी के पिता)। (उक्त वंशावली पुराणों से मेल नहीं खाती, फिर भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE 2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आकर्षक है।)

जनश्रुति तथा लोकगीत के अनुसार कृष्ण का आदि स्थान मुखीम गांव के 'सीम' नामक स्थान पर है। यह गांव टिहरी-गढ़वाल के रमोली पट्टी के अंतर्गत स्थित है। यहीं नागराजा की पूजा होती है। मुखीम गांव के आस-पास आरुणी सीम, वारुणी सीम, गुप्त सीम, काला सीम, तलवला सीम आदि सीम (वह स्थान जहां धरती के नीचे पानी हो—जिसे गढ़वाली में सिमार भी कहते हैं) हैं, जिनकी संख्या सात बताई जाती है। लोक विश्वास है कि आज भी इन सीमों के समीप कृष्ण और कई अन्य योगियों का निवास है। आज भी भाग्यवानों को उनके दर्शन होते हैं। मुखीम (टिहरी-गढ़वाल) में नागराजा श्रीकृष्ण का मन्दिर है, जिसमें कृष्ण की प्रधान मूर्ति है। वासुनाग (वसुदेव) और गोपियों की मूर्तियां भी इस मन्दिर में हैं। कहते हैं कि इस मन्दिर को स्वयं नागराजा कृष्ण ने अपने मंत्री गंगू रमोला के द्वारा तब बनवाया था, जब वे अपने पिता वासुनाग को बदरीनाथ यात्रा पर ले जा रहे थे। सीम-मुखीम का नाग-मन्दिर आज भी यात्रियों का तीर्थ है।

नागराजा कृष्ण की वार्ता जब 'जागर' में जागरी गीतों में सुनाते हैं, तब 'पस्वा' कृष्ण की उन सभी लीलाओं का नर्तन करता है। 'वार्ता' में एक कथा इस प्रकार भी आती है कि वासुकी नाग और जिया ब्राह्मणी की सन्तान नागराजा कृष्ण हैं। वासुकी नाग और जिया ब्राह्मणी के 9 बेटे और 9 बेटियां थीं। जिस प्रकार 'वर्म्याली माता कुन्ती' से पांच पांडवों की अलौकिक कथा कही जाती है, उसी तरह जिया माता वामणी के सत के अंश से 9 भाई और नागों 9 बहिन नागणियों की उत्पत्ति बताई जाती है।

गढ़वाली लोक-मानस ने 'कुन्ती' तथा 'जिया माता बामणी' को सती माताओं के रूप में और उनकी सन्तानों को देवियों और देवताओं के रूप में स्वीकारा है। आज समस्त गढ़वाल में उनकी पूजा होती है। वे अपने भक्तों की रक्षा करते हैं। पूजा में नर्तन होता है और वे भी अपने 'पस्वा' के सिर पर आकर जन-कल्याण करते हैं।

वार्ता में वीर परिपाटी का धार्मिक लोकनृत्य होता है। इन्हीं 9 नागों और 9 नागिनियों को 9 रौतेला और 9 रौतेलियों के नाम से कथा में जाना जाता है। रौतेला का अर्थ राजकुंवर और रौतेली का अर्थ राजकुंवरि होता है। रमोली पट्टी के अंतर्गत नागवंशी राजाओं का राज्य था। इन भाइयों में ब्रह्म कुंवर, सूरज कुंवर, धर्म कुंवर, नियम कुंवर, जत कुंवर, सत कुंवर आदि प्रसिद्ध वीर हुए, जिनमें सबसे बड़े कृष्ण कुंवर थे। कृष्ण कुंवर अर्थात् कृष्ण की प्रणय-गाथाओं में ब्रह्म कुंवर (ब्रह्मकौल) का काफी उल्लेख आता है।

कथा से ज्ञात होता है कि ये सभी नागवंशी महान् पराक्रमी थे। इनका समय पांडवों के ही समय ठीक बैठता है, क्योंकि एक नाग-कन्या वासुदत्ता का विवाह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अर्जुन से हुआ था। सूरज कुंवर मोट की राजकुमारी जोतरमाला का ब्याह कर लाता है। कृष्ण की भी अनेक कथाएं इस तरह की मिलती हैं, जिनका सम्बन्ध नागवंशी कुंवरों व मोट की कुमारियों के साथ है।

नागवंशी कुंवरों व कुंवरियों पर अनेक संकट भी आये। 'नगोली' कारुणिक गीत उन्हीं नाग-कन्याओं के हृदय-विदारक गीत हैं, जो 'झुमैला', खुदेड़ एवं हृदय-विदारक गीतों के समान लोक में मिलते हैं।

अनेक जागर गीतों के होते हुए भी कृष्ण के 'जागर' को कंसकोट (मथुरा) से ही प्रारम्भ करने की प्रथा है। 'जागरी' जब नागर्जा का जागर गीत शुरू करता है तो भगवान् कृष्ण की कहानी कंस इस प्रकार वर्णन करता है—

जमुना वार होलो कंसु को कंस कोट।
जमुना पार होलो गोकुल वैराट।
कंसकोट होलो राजा उग्रसेन।
तौंकी राणी होली राणी पवनरेखा।
बायीं कोखी पैदा पापी हरिणा कंश।
दैंणी कोखी पैदा देवतुली देवकी।
ओ मदु बामण लगन भेददा।
आठो गर्भयीं को होलो कंसुको छेदक।

"जमुना के इस पार कंसकोट और उस पार गोकुल वैराट (था)। कंसकोट में राजा उग्रसेन थे और उनकी पत्नी पवन रेखा थी, जिसके बाईं कोख से पापी कंस और दाहिनी कोख से देव तुल्य देवकी का जन्म हुआ। मृदु ब्राह्मण ने जब जन्म-कुंडली बनाई तो उसने स्पष्ट कहा कि इसके (देवकी के) आठवें गर्भ से कंस का विनाश करने वाला पैदा होगा।"

ब्राह्मण की भविष्यवाणी से सारा कंसकोट चिंता में डूब गया। अनेक प्रकार की योजनाएं बनाई गईं। देवकी के युवा होने पर उसका विवाह वसुदेव से किया गया और उन्हें (पति-पत्नी को) कंसकोट में रहने का आदेश दिया गया।

कंस महापापी था। देवकी के हर गर्भ को नष्ट करता गया। जब आठवें गर्भ की सूचना कंस को मिली तो उसने अपने दरबारियों से परामर्श किया कि किस तरह से देवकी के गर्भ को गिराया जाय।

एक तरफ कंस के दरबारियों में ऐसी योजना बन रही थी और दूसरी ओर दुखी प्रजा भगवान् से प्रार्थना कर रही थी कि हे प्रभो ! जन-कल्याण के लिए मृत्युलोक में शीघ्र ही अवतरित हो जाओ और इस अत्याचारी कंस का सर्वनाश करो।

जागरी कृष्ण-जन्म के जागर गीत को बड़े ही कौशल से डौंर-थाली के शब्दों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में प्रस्तुत करता है—

जब कंस को पूर्णत: मालूम हो गया कि देवकी गर्भवती है तो दरबारियों की सलाह से उन्होंने सौ मन तांबे की गागर बनवाई और नौ मन शीशे की ड्यूली (गागर को सिर पर अटकाने के लिए टेकचा) बनवाई। देवकी को कहा गया कि यमुना से पानी भर कर लाओ। रोती-रोती देवकी यमुना के किनारे पानी लेने पहुंची। देवकी के रोने से दूसरी ओर यशोदा को भी उसकी भनक पड़ी तो वह भी रोने लगी। गर्भ से कृष्ण ने आवाज दी—मां देवकी, पानी भर ले, मैं इस गागर को फूल के समान कर दूंगा। देवकी गागर भर कर जब कंसकोट पहुंची तो कंस आश्चर्य में पड़ गया। जब उन्होंने गागर को उतारने को कहा तो देवकी ने जैसे ही गागर को नीचे उतारा, उसके पानी से कई कंस बह गये। जब देवकी को नवां महीना लगा तो उन्होंने वसुदेव के साथ देवकी को कैदखाने में डाल दिया। भादों की काली रात में जब चारों ओर तूफान और मूसलाधार वर्षा हो रही थी, रोहिणी नक्षत्र के प्रवेश होते ही कृष्ण भगवान् ने धरती पर अवतार लिया। जेल के दरवाजे स्वयं खुल गये। वसुदेव और देवकी के हाथ-पैरों की बेड़ियां भी अपने आप खुल गईं। कंस का विनाश करने वो भगवान् अवतरित हो गये। इस कथा का जागर गीत इस प्रकार है :

हो वसुदेव को जायो प्रभा, जसोदा को वालो,
देवकी नन्दन प्रभो, द्वारिका नरेश।
भूपति-भूपाल प्रभो नौछमी नारेणा।
भगत वत्सल प्रभो, कृष्ण भगवान।
हो प्रकट व्हे जाण प्रभो, मृत्यु लोक मांज।
घर मेरा भगवान अब, धर्म को अवतार।
सी लोला कंगस व्हेने, मारि अत्याचारी।
तौं पापी कंगसू को प्रभो, कर सर्वनाश।
हो देवकी माता का तौन, सात गर्भ ढंने।
अष्टम गर्भ की दऊं, क्या जाल रचीने।
अव लगी देवकी तई पहिलो दूजो मास।
तौं पापी कंगसू को प्रभो, खुबसाट मचीगे।
हो क्वी विचार करा चुचों, क्वी व्यूंत बतावा।
जैं बुद्धि ई देवकी को, गर्भ गिरी जाव।
सौ मण तांबा की तौंन, गागर बणाये,
नौ मण शीशा की वणे, गागर की ड्यूली।
हो अब जांद देवकी, जमुना का छाला।
मुंड मा शीशा की ड्यूली, अग तांबा की गागर।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रुंदेड़ा लगौंदपौंछे, जमुना का छाला।
जसोदा न सूणी याले, देवकी को रोणो।
हो कू छई क्या छई, जमुना की रुंदेड़।
केकु रोणी छई चुची, जमुना की पंद्यारी।
मैं छऊं हे दीदी, अभागी देवकी।
मेरा अष्टम गर्भ को अब होंद खेवापार।
हो वल्या छाला देवकी, पल्या छाला जसोदा।
द्वी वैंण्यूं का रुंदेड़ा न जमुना गूंजिगे।
मथुरा गोकुल मांज, किबलाट पोड़ी गे।
तौ पापी कंगुसू का प्रभो, चौला पोड़ी गैंने।
हो अब व्हेगे कंगुसू अब अष्टम गर्भ त्यार।
अष्टम गर्भ होलो, कंगसू को विनास।
अब लगी देवकी तई, तीजो चौथो मास।
सगर बगर व्हेगे तौं पापी कंगसू को।
हो त्रिभुवन प्रभो मेरा त्रिलोकी नारैंण।
गर्भ का भीतर विटी धावड़ी लगौंद।
हे माता मातेश्वरी जल भोरि लेदी।
तेरि गागर बैण धूंलो फूल का समान।
हो देवकी माता न अब सहारो बांध्याले।
जमुना का जल मांज गागर धौरयाले।
सरी जमुना ऐगे प्रभो, गागरी का पेट।
गागर उठीगे प्रभो, बीच स्युंदि मांज।
हो ! पहुंची गे देवकी, कंगसू का दरबार।
अब बिसाई देवा भैज्यूं पाणी की गागर।
जौन त्वेमा उठै होली, ऊंही बिसै द्योलो।
गागर बिसौंदी दऊं कंगस बौगि गैंने।
हो—अब लगी देवकी तई पाचों छटो मास
तौं पापी कंगसू को प्रभो, हाय-टापी मचीगे।
अब लगी देवकी तई, सातों-आठों मास।
भूक तीस बंद व्हेगे तौं पापी कंगसू की।
हो, उनि सौण की स्वाती, उनिभादों की राती।
अब लगी देवकी तई नवों-दसों मास।
नेडु धोरा ऐगे बाला, तेरा जनम को बगत्
अब कन कंगसू न तेरो जिंदगी को ग्यान।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हो ! तौं पापी कंगसू न प्रभो, इनु ब्यूंत सोच्याले
देवकी वसुदेव तौंन जेल भा घारैंने।
हाथू मा हथकड़ी लेने, पैरु लेने बेड़ी
जेल का फाटक पर संतरी लगै देने।
हो ! उनि भादौं को मैंदा, उनि अंधेरी रात
बिजली की कड़क भैर बरखा का थीड़ा।
अब व्हेगे मेरा प्रभो ठीक अद्धा रात
अब ऐगे मेरा प्रभो रोहणी नगक्षेत्र।
हो ! हाथू की हथकड़ी टूटी, टूटी पैरु बेड़ी
जेल को फाटक खुले धरती कम्पिगे।
अष्टस गर्भ व्हेगी कंगसू को काल
जनमी गे भगवान प्रभो, कंगसू को छेदनी।

कृष्ण (नागर्जा) के जन्म वाले गीत के बाद 'जागरी' उसकी अद्‌भुत लीलाओं का बखान करता हुआ विभिन्न तालों में डौंर-थाली को बजाता है।

नागराजा कृष्ण के जागर बड़े कौशल से गाये जाते हैं। कन्दुक-क्रीड़ा, माखन-चोरी, चीर-हरण, दधि-मंथन आदि सभी लीलाओं का वर्णन जैसे-जैसे घामी करता है, 'पस्वा', जिस पर कृष्ण आता है, उसी भावभंगिमा में नृत्य करता है। इस गीत में सुन्दर वर्णन देखने योग्य हैं :

छयां धेनु का चरैया हे, मोहन।
व्हेला द्वारका नन्दन हे, मोहन।
छयां वासुदेव का जाया हे, मोहन।
व्हेला देवकी का लाडा हे, मोहन।

रैली तू दई की दूपकी हे, मोहन।
व्हेला दूद की विराली है, मोहन।
तेरी नौ सुर्‌या मुरली हे, मोहन।
व्हेलो दू राण्यों को रौंसिया हे, मोहन।

तेरा कानों कुण्डल हे, मोहन।
व्हेलो फूलों को हौंसिया हे, मोहन।

"—हे मोहन (कृष्ण) ! तू गाय को चराने वाला द्वारिका का योग्यतम पूत है। वसुदेव का जाया और देवकी का प्यारा है। तू दही की घात लगाने वाला, तू दूध पीने वाली बिल्ली है। तेरी नौ सुरों की बांसुरी है, तेरे कानों में कुण्डल विराजमान हैं, तू फूलों का शौकीन और गोपियों व महारानियों का रसिया है।"

जैसा-जैसा वर्णन गीत की लड़ियों में होता है कृष्ण का पस्वा वैसा-वैसा आकर्षक नर्तन करता जाता है। नाग-नृत्य भी इसी क्रम में होता है। इस नृत्य में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भावाभिनय देखने योग्य होता है।

कृष्ण (नागर्जा) के जागर में एक गाथा रुक्मिणी की आती है, जिसमें गढ़वाली जीवन की मौलिकता के दर्शन होते हैं। कथा इस प्रकार शुरू होती है :

कृष्ण अपने ग्वाल-बाल साथियों के साथ गोचारण के लिए जाते हैं। वहां वे अपनी बांसुरी बजाते हैं। रुक्मिणी उनकी बांसुरी सुनकर मुग्ध हो जाती है। वह अपने मन में सोचती है कि ऐसी तो उसकी बांसुरी प्यारी है तो वह कितना प्यारा होगा ? रुक्मिणी से न रहा मया। उसने अपना शृंगार किया और पशुचारण वाले क्षेत्र की तरफ चल पड़ी। कृष्ण तो छलिया थे ही, उन्होंने बीच में एक नदी उत्पन्न कर दी और किनारे पर नाविक बनकर खड़े हो गये। रुक्मिणी ने वहां पर पहुंचते ही कहा—"अरे, मल्लाह ! मुझे उस पार उतार दे और हां, यह तो बता कि तुम उतराई क्या लोगे ?" कृष्ण बोले—"मैं क्या बताऊं, कुछ भी, जो उचित समझें दे दें।" रुक्मिणी स्त्री ही ठहरी, बिना सोचे-विचारे नाव पर बैठ गई। नदी की बीच धार में कृष्ण ने नाव को छोड़ दिया। नाव हिलने-डुलने लगी। रुक्मिणी को डर लगने लगा। वह बोली—"अरे नाविक, मुझे उस पार उतार दो।" कृष्ण बोले—"पहले मेरी उतराई दे दो, तभी उस पार ले जाऊंगा।" रुक्मिणी को क्रोध आ गया। वह बोली—"तुम कैसे मल्लाह हो, जो बीच नदी में उतराई मांगते हो ?" जब कृष्ण ने नहीं माना तो रुक्मिणी ने कहा—"मैं तुझे हजारों का धन दूंगी और करोड़ों की माया, परन्तु मुझे सकुशल उस पार उतार दो।" कृष्ण ने मुस्करा-कर कहा—"नहीं, नहीं, रुक्मिणी ! न मुझे करोड़ों की माया चाहिए और न हजारों का धन। मुझे तो रुक्मिणी तुम अपनी मीठी वाणी से जरा जीजा कह दो।" रुक्मिणी रोने लगी और मन में सोचने लगी कि इस काले भूत को कभी भी जीजा नहीं कहूंगी। मरना तो एक दिन है ही। प्रकट में बोली—"मैं तुमको जीजा कदापि न कहूंगी।" कृष्ण ने नाव के डांडों को ढीला छोड़ दिया। नाव पूर्णतया डगमगाने लगी। तब रुक्मिणी ने कोई सहारा न समझकर कहा—"हे जीजा ठाकुर, मुझे उस पार उतार दो।"

इस प्रसंग के बाद गाथा में कृष्ण के अलौकिक रूप की सोद्देश्य टिप्पणी जागरी यों देता है कि—हे कृष्ण ! हे प्रभो ! तुमने अहंकारियों का अहंकार तोड़ा है और ध्वजाधारियों की ध्वजाएं तोड़ी हैं। इसके आगे गाथा में रुक्मिणी के अहं-कार को तोड़ने की एक और घटना आती है। कृष्ण चूड़ी बेचने वाले का रूप धर कर रुक्मिणी के यहां पहुंचते हैं। रमकती-छमकती रुक्मिणी चूड़ी पहनने के लिए आती है। चूड़ी पहनाने के बाद वे अपनी चूड़ियों का मूल्य मांगते हैं। मोल में वे केवल उसके मुंह से मीठी वाणी में जीजा सुनना चाहते हैं। जब किसी तरह भी चूड़ी वाला कृष्ण उसका हाथ नहीं छोड़ता तो वह हारकर कह देती हैं—हे जीजा, मेरा हाथ छोड़ दे और एक दिन कृष्ण अपने संगी-साथी ग्वाल-बालों के साथ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रुक्मिणी का हरण कर लेते हैं। नृत्यगीत इस प्रकार है :

बालपन मा ही बणी गए कृष्ण
नन्दू को ग्वैर, गायों को गोपाल।
गऊ चुगौंदू मोहन, बांसुली बजौंदू।
चला भाई ग्वैर छोरौं, मथुरा वृन्दावन,
बांसुली बजौंला, कौथीक करला।
तब बजाई कृष्ण त्वैन मोहन मुरली,
तेरी मुरली सुणीक कामधेनु न चरणो छोड़योले,
सभी ग्वैर छोरा मोहित करयाला।
कुन्दन शैर मंग तेरी मुरली सणी,
रुकमणी रोज रंदी सुणन लगी।
कोंपलू-सी फूल रुकमणि सोना की-सी टुकड़ी।
ताल-सी माछी, सरप की-सी बच्ची।
सुण्याले तैंन मुरली अनबन भांती,
मन होइगे मोहित, चित्त चंचल।
भौं कुछ होई जाई मैंन मुरल्याक जाण।
एसी एकी बांसुली अफू कनू होलू ?
पाणी की-सी बूंदकी, नौण-सी गोंदकी,
तैं दिन वा रुकमणि लैरेन्दी पैरेन्दी,
चलदी चलदी आइगे अधबाट।
कृष्ण भगवान इना रैन छली,
बीच बाट मां नदी दिने उपजाई।
अफू ह्वैगे भगवान धुनार-सी लम्बो।
लुहार-सी काली, भाड़ को-सी मुछालो।
तबरेक रुकमणि भली वणीक बांद
तख मुंग एक बोलण लैगे—
हे धुनार छोरा तराई दियाल।
तराई क्या लेण छो तराई बोल्याल ?
तराई क्या बोलन भैन, भौं कुछ दियान।
जनानी की जात, डोंडा मा बैठीगे,
आधी गाड बीच कृष्ण भगवान
डोडू खड्डू करयाले, पाणी मा छोड़याले।
हे धुसार छोरा, मैं पल्या छोड़ गाड।
पल्या छोड़ लिजौंलू त्वै पैले तराई दियाल।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कनु छैं तु धुनार, अधबीच तराई तू लेन्दू,
हजारु को धन दिऊंदू करोड़ू की माया।
सुण सुण रुकमणी हजारु को धन
नी मांगदू, न करोड़ू की माया।
जरा रुबसी घीबीन राणी मैं भेना बोल्याल।
हि रि रि कैक डोंडू लैंगे बगण।
डोंडू बगण लैंगे, दिल लैंगे डिगण।
तैं दिन रुकमणि राणी रोंदी छ तुडांदी,
ये काला औधूत तैं मैं भेना नी बोलौं।
एक दिन संसार न मरी जाण,
त्वैं क तैं मैं कभी मेरा नी बोलौं।
डोंडा का डांड तैंन ढीलो करीले,
रुकमणि को शरील पंछी-सी उड़ीगे।
ऐथर देखदी पैथर राणी,
हे भेना ठाकुर मैं पल्या छोड़ गाड।
गर्वियों का गर्व तोड़या स्वैन,
धजियों का तोड़या धज।
तब भगवान न हैंको छद्‌म धारे,
बणी गए प्रभु बांको चुरेड़।
हाथ मां धर्‌यालीन चूड़ी अनमन भांति,
चूड़ी पैर्‌याला तुमू स्वामियों की प्यारी,
राजमती चूड़ी होली, भानुमती छेको।
ढलकदी छणकदी रुकमणी औंदी,
बोल रे बोल चुरेड़, चूड़ियों का मोल?
तैं दिन भगवान त्वैंन वीं को हाथ पकड़्याले।
राजौं की कन्या छई, क्या बैन बोदी
हजारु को धन दिऊंलू करोड़ू की माया।
हे चुरेड़ तू मेरो हात छोड़ दे।
पैली मेरी चूड़ियों को मोल दियाल।
सुण्याल रुकमणि, तू मैं कू—
रुबसी धीचीन भेना बोल्याल।
नौनी रुकमणि रोदी छ तुड़ांदी,
हेरदी छ देखदी राणी तब बोदी—
हे मेरा भेना, मेरो हाथ छोड्‌याल।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तब ऐगी रुकमणि मथुरा वृन्दावन,
देख कना ऐंन गोकुल का ग्वैंर।
सुण रुकमणि बोद कृष्ण भगीवान—
बिना ब्यौ राणी त्वैं नी रखदू।
कठा होई जावा मथुरा का ग्वैरु,
ई का साथ मेरो ब्यौ करी देवा।
ग्वैंर छोरा कवी बण्या बामण, कुई औजी,
घैंट्या केला कुलैं का स्तंभ।
तैं दिन तौंकू ब्यौ होई गए।[1]

"—बाल्यकाल में ही कृष्ण, नन्द के चरवाहे, गायों के गोपाल बन गये। मोहन गायें चराते, वंशी बजाते थे। चलो भाई ग्वाल-वाल, मथुरा-वृन्दावन चलो। वंशी बजाएंगे और अन्य विनोद करेंगे। तब कृष्ण ने मोहिनी मुरली बजाई, तेरी मुरली को सुनकर कामधेनुओं ने चरना छोड़ दिया, चरवाहों को मोहित कर दिया। कुंदर नगर में तेरी मुरली को रुक्मिणी रोज सुनती रहती थी। रुक्मिणी कोंपल और फूल की तरह थी, बिल्कुल सोने की-सी टुकड़ी। ताल की-सी मछली, सफ की-सी बच्ची। उसने कृष्ण की रसीली मुरली सुनी, मन मोहित हो गया, चित्त चंचल। चाहे कुछ हो जाय, मैं मुरलिया को ब्याहूंगी। ऐसी तो उसकी मुरली है, स्वयं कैसा होगा? पानी की-सी बूंद, नवनीत की-सी टिकिया। वह रुक्मिणी उस दिन सजी-धजी, चलती-चलती आधे रास्ते तक चली आई। कृष्ण भगवान ऐसे छली रहे, उन्होंने बीच रास्ते में नदी उपजा दी। अपने आप भगवान मल्लाह बन गए—लोहार की तरह काले, भाड़ की-सी लकड़ी। तभी साज-श्रृंगार कर रुक्मिणी वहां आकर कहने लगी—हे मल्लाह छोकरे, मुझे पार पहुंचा दे और उतराई क्या लेगा यह भी बता दे। उतराई क्या बताऊं मैं? जो मर्जी आए, दे देना। औरत जात ठहरी, नाव में बैठ गई, आधी नदी में कृष्ण भगवान ने नाव खड़ी कर दी और पानी में छोड़ दी। हे मल्लाह छोकरे, मुझे पार पहुंचा दे और उतराई क्या लेगा यह भी बता दे, मुझे उस पार छोड़ दे। हां, उस पार ले चलूंगा, पहले उतराई दे देना। कैसा मल्लाह है तू, आधे में ही उतराई मांगता है। हजारों का धन दूंगी मैं, करोड़ों की सम्पत्ति। सुन-सुन रुक्मिणी, हजारों का धन नहीं मांगता, न करोड़ों की सम्पत्ति। जरा अपने प्यारे मुंह से तू मुझे जीजा कह दे। हि रि रि हि रि रि करती नाव बहने लगी, नाव बहने लगी, हृदय डिगने लगा। उस दिन रुक्मिणी रोती विलपती है, इस काले अवधूत को कभी जीजा न कहूंगी। एक-न-एक दिन संसार में सबको मरना है, तेरे लिए मैं जीजा कभी न कहूंगी। नाव के डांड़ उसने

1. डॉ० गोविन्द चातक : गढ़वाली लोक-गाथाएं, पृ० 5-8

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ढीले कर दिए, रुक्मिणी के प्राण पंछी की तरह उड़ गए। रानी आगे देखती है और फिर पीछे, फिर बोली—हे जीजा ठाकुर, मुझे पार ले चल। तूने घमण्डियों का घमंड मिटाया और सम्पत्तिशालियों की सम्पत्ति। तब भगवान ने दूसरा छद्म रूप धारण किया—प्रभु चूड़ी वाला बन गया। भांति-भांति की चूड़ियां हाथ में ले लीं और चिल्लाए, हे पतियों की प्यारियो, चूड़ियां पहन लो। राजकुमारियों के योग्य चूड़ियां हैं और भानु की आभा उन पर अंकित है। तब दुलकती-छनकती रुक्मिणी आई, कहो रे कहो, अपनी चूड़ियों का मोल कहो चुरेड़। उस दिन भगवान ने उसका हाथ पकड़ लिया। राजकन्या थी वह शरमा कर बोली, हजारों का धन दूंगी, करोड़ों की सम्पत्ति, हे चुरेड़, तू मेरा हाथ छोड़ दे। पहले मेरी चूड़ियों का मोल दे दे, सुन ले रुक्मिणी तू मुझे इस प्यारे मुंह से जरा जीजा कह दे। रुक्मिणी तब रोने-बिलपने लगी, इधर-उधर देखकर तब बोली—हे जीजा, मेरा हाथ छोड़ दे। तब रुक्मिणी मथुरा-वृन्दावन चली आई, उसे देख गोकुल के ग्वाले इकट्ठे हो गए। सुन रुक्मिणी, तब भगवान कृष्ण ने कहा, तुझे बिना ब्याहे नहीं रहूंगा। हे मथुरा के ग्वालो, इकट्ठे हो जाओ, इसके साथ मेरा ब्याह कर देना। ग्वाल-बाल कोई ब्राह्मण बने, कोई औजी, केला और चीड़ के स्तम्भ खड़े किए और उस दिन उनका ब्याह हो गया।"

यह नृत्य गाथा पौराणिक गाथा से पूर्णतः भिन्न है। पुराणों में रुक्मिणी को प्राप्त करने के लिए कृष्ण को काफी संघर्ष करना पड़ा था। परन्तु गढ़वाल के इस जागर में उस संघर्ष का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता। सारी गीत कथा में कृष्ण को रसिकता और रुक्मिणी का मुग्धा स्वरूप ही मिलता है।

रुक्मिणी हरण की तरह चन्द्रावली हरण भी कृष्ण (नागर्जा) के जागर में बड़े उल्लास के साथ गाया जाता है और नागर्जा का मनोरंजक नृत्य देखने योग्य होता है। चन्द्रावली हरण में चन्द्रावली को रुक्मणी की बहन बताया गया है। वह अद्वितीय सुंदरी के रूप में वर्णित की गई है। कृष्ण चन्द्रावली को प्राप्त करने के लिए कभी ब्राह्मण तो कभी चूड़ी बेचने वाले का वेश बनाते हैं तो कभी गरीब बालक का रूप रखकर नौकर बनने की इच्छा व्यक्त करते हैं, परन्तु हर बार चन्द्रावली उन्हें पहचान लेती है। अन्त में कृष्ण रुक्मिणी से ही मार्ग बताने को कहते हैं। रुक्मिणी के कहने पर कृष्ण रुक्मिणी का रूप धारण कर चन्द्रावली के पास पहुंचते हैं और कहते हैं कि बहन मैं विधवा हो गई हूं। चन्द्रावली को बहुत दुख हुआ। रात को दोनों बहनें साथ-साथ पलंग पर सोती हैं। चन्द्रावली को संदेह हो गया। चन्द्रावली ने खटमल का रूप धारण किया। कृष्ण ने भौंरे का रूप धारण किया। चन्द्रावली ने पानी में जाकर मछली का रूप धारण किया तो कृष्ण ने ऊदबिलाव का रूप धारण कर मछली का पीछा किया और उसे पकड़ लिया। यमुना-तट पर कृष्ण-भगवान अपने असली रूप में प्रकट हुए और चन्द्रावली भी अपने वास्तविक रूप

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में कृष्ण के सामने खड़ी हो गई। तब कृष्ण उसे ब्याह कर ले गए।

चन्द्रावली हरण गाथा में नाटकीय प्रसंगों और अति मानवीय तत्त्वों की अधिकता है, जिसको गढ़वाली जन-मानस ने उनकी (कृष्ण की) अलौकिक शक्तियों के रूप में सहज स्वीकार किया है। जागरी इन्हीं प्रसंगों को बड़े कौशल से गाता है और उसी तरह डौंर-थाली में ताल पड़ता है तथा कृष्ण का 'पस्वा' उसी तरह ईश्वरीय शक्ति का प्रदर्शन दिखाता हुआ आकर्षक ढंग से नाचता है।

नागर्जा (कृष्ण) के जागर में 'कुसुमा कोलिन' की नृत्यगाथा भी महत्त्वपूर्ण है। इस कृष्णलीला नृत्यगाथा में कृष्ण का कोलिन जाति की कुसुमा पर मुग्ध होने की रोचक कथा गाई जाती है। कृष्ण कुसुमा के सुनहरे बाल की लट पर मोहित होकर उसके घर तक पहुंच जाते हैं। जब वे कुसुमा के सौन्दर्य को देखते हैं तो स्तब्ध रह जाते हैं। कुसुमा भगवान कृष्ण को पहचान जाती है। कहती है—

"आप सांवले नारायण हैं। हम कोली हैं। आपने इधर कैसे दर्शन दिए?" कृष्ण ने कहा—"ऐसी बात न कहो, कुसुमा। परन्तु कोली भाई कहां हैं?" कुसुमा ने कहा—"वे इन्द्र के यहां वस्त्र बुनकर पहुंचाने गये हैं।" यह सुनते ही कृष्ण कहते हैं—"भाभी कुसुमा, कोली भाई तो भाग्यवान हैं। जिसकी तुम जैसी सुंदर ढले हुए अंगों की पत्नी है। तुम तो मेरे हृदय में बसती हो।" कुसुमा भगवान के आग्रह को न टाल सकी। दोनों शैयाशायी हो गए। दोनों ऐसी मीठी नींद में सोये कि कुछ पता ही न चला। प्रातःकाल जब कोली लौटा तो उसको देखकर और कृष्ण को सोया जानकर मुर्गे ने बांग दी। कृष्ण हड़बड़ाये हुए जागे और हल्दी के पौधों के बीच छिप गए। कोली ने अपनी पत्नी के प्रेमी को बहुत ढूंढ़ा, परन्तु कहीं पता न लगा सके। कृष्ण हल्दी की बाड़ी पर और मुर्गे पर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने मुर्गे को वरदान दिया कि तुम्हारे सिर पर कलंगी होगी और हल्दी की बाड़ी को वरदान दिया कि तुम हमेशा शुभ कार्य में काम आओगी। गढ़वाल में आज भी हल्दी की पिठाई को ही हर शुभ कार्य में प्रयुक्त किया जाता है।

'सूजू की सुनारी' नामक नृत्यगीत गाथा में कृष्ण के परकीया प्रेम का दूसरा उदाहरण मिलता है। सूजू की सुनारी को कृष्ण स्वप्न में देखते हैं और तभी से उसे प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर हो जाते हैं। कृष्ण इस गाथा में भी सुनारी को भाभी और सुनार को बड़ा भाई कहते हैं। सुनारी को कुसुमा की तरह कृष्ण प्राप्त करके ही दम लेते हैं। कृष्ण का यह रसिक व्यक्तित्व सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में व्याप्त है परन्तु गढ़वाल में उसका स्वरूप भिन्न प्रकार का मिलता है।

गढ़वाल में कृष्ण के साथ कई कथाएं जुड़ी हैं। नागकन्या पत्थरमाला के पति-रूप में भी कृष्ण को नचाया जाता है। नाग जाति के राजा रूप में भी उन्हें सम्मानित किया गया है।

सारांश में यही कह सकते हैं कि कृष्ण का जागर नागर्जा के रूप में सारे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गढ़वाल में लोकप्रिय है। कृष्ण की जीवन लीला पर जागरी कई रातों तक गीत गाता रहता है और उसी के अनुरूप कृष्ण का नाच भी होता रहता है। इन सब 'जागरों' से स्पष्ट हो जाता है कि कृष्ण ने उत्तराखण्ड को अधिक प्रभावित किया।

पांडवों की देवतारूप में पूजा

पांडवों को गढ़वाल-कुमाऊं-हिमाचल प्रदेश में देवता रूप में पूजा और नचाया जाता है। गढ़वाल के प्रथम इतिहासकार पं० हरिकृष्ण रतूड़ी के शब्द उद्धरणीय हैं—

"गढ़वाल की जनता का पांडवों पर भी बड़ा प्रेम है। ऐसा कोई ग्राम नहीं होगा, जिसमें प्रतिवर्ष एक बार पांडव नहीं नचाये जाते। उन लोगों का विश्वास है कि पांडवों के नचाने से ग्राम में सुभिक्ष रहता है, किसी संक्रामक रोग का भय नहीं रहता।[1]

ऐसी भावना देवताओं के प्रति प्रकट की जाने वाली भक्ति को और भी दृढ़ कर देती है। देवी-देवताओं के प्रति 'लोक' का इसीलिए अटूट विश्वास रहता है कि वे (देवता) उनकी हर तरह से रक्षा करेंगे।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि गढ़वाल में पांडवों के प्रति विशेष लगाव है। उन्होंने अपने हिमालय परिचय—(एक) गढ़वाल में स्पष्ट लिखा है कि "पांडवों की महिमा को वैसे सारा भारत जानता है किन्तु पांडवों ने पूज्य देवताओं का रूप गढ़वाल में ही लिया है।"[2]

कृष्ण के बाद पांडवों का इस क्षेत्र में अधिक प्रभाव रहा है। पांडवों के 'जागर' भी कृष्ण (नागराजा) के 'जागरों' की तरह गाये, बजाये जाते हैं और पांडवों को भी नचाया जाता है। पांडवों का इस धरती से जन्म और मृत्यु का सम्बन्ध रहा है। महाराजा पांडु ने कुन्ती और माद्री सहित गंधमादन पर्वतान्तर्गत पांडूकेश्वर में तपस्या (आदिपर्व-118/48) की थी और यहीं पांचों पांडवों का जन्म तथा नामकरण संस्कार (आदिपर्व-123) हुआ था। यहीं (पांडुकेश्वर में) पांडु की मृत्यु हुई और यहीं माद्री पांडु के साथ सती (आदिपर्व-124) हुई थी। आज भी पांडुकेश्वर में ये सभी स्थान उन्हीं नामों से जाने जाते हैं। पांडुकेश्वर के आस-पास 'पंडों (पांडवों) की चौंरी,' 'पंडों का सेरा' और 'पंडों (पांडवों) की चौपड़' आज भी ज्यों की त्यों

1. पं० हरिकृष्ण रतूड़ी—गढ़वाल का इतिहास (गढ़वाली प्रेस : देहरादून : 1928, पृ० 210)
2. राहुल सांकृत्यायन : हिमालय परिचय—एक : गढ़वाल, इलाहाबाद ला जर्नल प्रेस, इलाहाबाद, पृष्ठ 280

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। पांडवों की चौपड़, पांडुकेश्वर के सामने वाले पहाड़ की एक गुफा के सामने स्थित है। चौपड़ की लम्बाई 48 फुट और चौड़ाई 40 फुट है। यह एक विशाल समतल पत्थर है जिसमें चौपड़ की रेखाएं आज भी दिखाई देती हैं। इसके अलावा भ्यूंडार (भीमधार) की फूलघाटी तो त्रिरथ की याद दिलाती ही है। भीम ने द्रौपदी के लिए फूल इसी नन्दनवन से प्राप्त किए थे। भीमधार (भ्यूंडार) के अलावा वसुधारा और व्यासगुफा के पास भीमपुल इस समय की याद दिलाता है।

वनपर्व के अठारहवें अध्याय में लोमश और युधिष्ठिर की यात्रा का वर्णन है। इस वर्णन में केदारखंड (गढ़वाल) के प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण स्थानों एवं धार्मिक स्थलों का विस्तार से वर्णन है। इन स्थानों की उन्होंने यात्रा की थी। वनपर्व (140-/27-29 और 142/2-11) में पांडवों का इस क्षेत्र में पूरी तरह रम जाने का उल्लेख है। गंगाद्वार (हरिद्वार-हरद्वार) से भृगुतुंग तक की यात्रा का दिलचस्प वर्णन वनपर्व का मुख्य विषय है। इसी तरह पांडवों की यमुना क्षेत्र (यमुना नदी की ओर—वनपर्व 84/26-44) की यात्रा का भी विवरण है और अंत में पांडवों का महाभारत के महाप्रास्थानिक और स्वर्गारोहण भी पर्व के अनुरूप इसी क्षेत्र से स्वर्ग जाने का भी उल्लेख है।

पांडवों की कर्मभूमि होने के कारण इस क्षेत्र में कई स्थानों पर उनके नाम से कई स्थान आज भी लोक में विख्यात हैं। गढ़वाल मंडल में सैकड़ों स्थानों पर उनके 'सेरे' (रोपाई वाले धान के खेत), पंडों की (पांडवों की) 'चौंरी,' 'पंडों की धार,' 'पंडों की खोली' और पंडों की कूड़ी (मकान) आदि आज भी देखी जा सकती हैं। भीम और अर्जुन का तो यह क्षेत्र प्रिय क्षेत्र रहा है। भीम के नाम से भी इस क्षेत्र में कई स्थान हैं। कई संस्मरण हैं। अर्जुन ने तो यहीं इन्द्र से धनुर्विद्या सीखी थी। अर्जुन ने शिव को प्रसन्न करने के लिए मिट्टी का विशाल लिंग बनाकर, शिव की पूजा की थी। महाभारत (किरातपर्व) में इस लिंग का वर्णन है। टिहरी-गढ़वाल की भिलंगना घाटी में यह लिंग—'खतलिंग' के नाम से एक विशाल पर्वत के रूप में विद्यमान है। मिट्टी को 'खत' कहते हैं। मिट्टी का लिंग—'खतलिंग' इस घाटी का मुख्य आकर्षण है। भिलंगना घाटी के लोग 'खतलिंग' की यात्रा करते हैं और पांडव बन्धुओं में केवल मात्र अर्जुन को 'खाती' के रूप में पूजते और नचाते हैं। यह एक आश्चर्यजनक बात है कि गढ़वाल मंडल में केवल इसी घाटी में अर्जुन को 'खाती' नाम से जाना जाता है और पांडव नृत्यों में 'खाती' (अर्जुन) का ही नृत्य विशेष रूप से सम्पन्न किया जाता है।

जौनसार-बाबर में विराट (विराट खाई) के खंडहर आज भी मौजूद हैं। लाखामंडल पांडवों की याद दिलाने हेतु आज भी इस क्षेत्र में विद्यमान है। लगता है तमसा या यमुना घाटी की तरफ कौरवों का प्रभाव क्षेत्र रहा होगा। बंदरपूंछ फतेहपर्वत क्षेत्र में दुर्योधन की पूजा आज भी होती है। जौनसार-बाबर एवं खाई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क्षेत्र में पांडवों का स्पष्ट प्रभाव मिलता है जबकि मोरी से नैटवाड़ तक कर्ण का प्रभाव है। नैटवाड़ के पास देवरा गांव में कर्ण का विशाल मंदिर है। कर्ण के 10 गांव हैं जबकि नैटवाड़ से आगे हर की दून—जखोल—बंदरपूंछ के 21 गांव दुर्योधन के हैं।

महाभारत के चरित्रनायक एवं नायिकाओं का यह चहेता अंचल रहा है। प्रभाव की दृष्टि से पांडवों का विशेष महत्त्व रहा है। उत्तरकाशी जनपद के फतेह-पर्वत, बंदरपूंछहर की दून के 31 गांवों को यदि छोड़ दें तो सम्पूर्ण गढ़वाल मंडल में पांडवों का ही प्रभाव मिलता है। अब तो कौरव क्षेत्र में भी पांडवों का नृत्य शुरू होने लगा है। परन्तु उन नृत्यों में पांडवों पर अधिक कटाक्ष किया हुआ मिलता है।

सर्वत्र स्वीकार्य पांडवों को गढ़वाल में देवता रूप में मान्यता मिली हुई है। विशुद्ध देवी-देवताओं के बाद इन्हें ही स्वीकारा, पूजा और नचाया जाता है।

धार्मिक भावना के पांडव (पंडों) नृत्य

धार्मिक भावना के देवी-देवता श्रेणी में रखे जाने वाले नृत्यों में पांडव लोक-नृत्यों को भी रखा जा सकता था, परन्तु हमारा विश्वास है कि ये लोक-नृत्य जहां देव प्रभाव से अधिक प्रभावित हुए हैं, वहां लोक-जीवन के भी अति निकट आ गये हैं। इसीलिए पांडव नृत्यों को धार्मिक कोटि के द्वितीय स्तर पर स्वीकार कर लोक-मनोरंजन के चहेते नृत्य मान लिया है।

देवी-देवता नृत्यों की तरह पांडव नृत्य के नायकों के भी 'पस्वा' होते हैं। पूजन-अर्चन का भी समान स्तर है, परन्तु पांडव नृत्य खुले मैदान के लोक-रंजक नृत्यों के रूप में अधिक व्यवहृत हो चले हैं, जिन्हें लोक समाज ने अपने आप में अधिक आत्मसात् कर लिया है।

पांडव नृत्य मंडाण का नृत्य है। मंडाण खुला मैदान या गांव के बीचोंबीच ऐसा पंचायती विशाल चौक होता है, जिसमें सौ-दो सौ नर्तक खुलकर नृत्य कर सकते हों। मंडाण, वह तभी कहलाता है, जब उस मैदान या चौक के एक कोने पर बाजगीर (ढोलदमों, तुर्री, रणसिंहे के वादक) अपने वाद्य यंत्रों के साथ एकत्र होकर नृत्य की अग्नि को प्रज्वलित करते हैं। मंडाण लगने से देवों के आवाहन के लिए अग्नि पूजा होती है। अग्नि प्रज्वलित होने पर भूमिपाल, खेतरपाल, घंड्याल और कुरम देवता की पूजा चंदन, अक्षत, रोली एवं धूप-दीप से होती है। प्रज्वलित अग्नि तब तक जलती रहती है, जब तक नृत्यों के आयोजन पूरे नहीं हो जाते। नृत्य जब-जब किए जाते हैं, तब-तब प्रतिदिन औजियों या आवजियों (बाजगीरों) द्वारा सुबह-शाम 'नौबत' बजाई जाती है। 'नौबत' सुबह-शाम का मंगलमय बाजा है, जिसकी धुन में गांव, क्षेत्र, प्रदेश एवं देश की खुशहाली के लिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पंचनाम देवताओं से प्रार्थना की जाती है। गढ़वाल में पहले हर दिन, हर गांव में नौबत बजायी जाती थी।

मंडाण में पहुंचते ही बाजगीर नौबत बजाते हैं। मंडाण की अग्नि के स्थल को धूनी, भाड़ या होम स्थल कहते हैं। बाजगीर प्रायः अग्नि के भाड़ की तरफ ही रहते हैं। एक तो ढोल दमाऊं के पूड़ों को अग्नि से सेंका जा सकता है, दूसरे यही अग्नि सारे नृत्यमंडाण का प्रकाशस्तम्भ होती है, जिसके मुख्य संचालक बाजगीर ही होते हैं। पांडव-नृत्य, अधिकांशतः रात के समय ही किए जाते हैं। पर्वतीय क्षेत्र में भाड़ की अग्नि प्रकाश का काम भी करती है।

पांडव नृत्य प्रायः नवरात्रियों तक चलते हैं। लोकभाषा में 'नौरतो' के नाम से पांडवों के नृत्य का सहज ज्ञान हो जाता है। वैसे यह नृत्य इतने लोकप्रिय हैं कि कभी भी और कहीं भी पांच-दस व्यक्ति एकत्र हुए नहीं कि पंडौं नाचने लगे। असौज-कार्तिक में जब खेती का कार्य समाप्त हो जाता है, प्रायः पंडौं नृत्य होता है। दीपावली के अवसर पर जब भैला-भैला नृत्य होता है, उसके बाद तो पंडौं का नाच प्रायः अनिवार्य रूप से होता ही है। मेले-ठेलों में भी पंडौं नाचना एक आम बात है। पांडव नृत्य इतना चहेता नृत्य है कि विधि विज्ञान की सीमा का भी उसमें अब कोई बंधन नहीं रहा। बाजगीर मिले, पंडौं-नाच की किसी शैली की मांग हुई, बाजगीर बजाने लगे, बस पंडौं-नाच शुरू हुआ।

जैसे पहले वर्णन किया गया है कि अग्नि-पूजा, वास्तुक पूजा आदि के बाद बाजगीर चौरास वाला बाजा बजाते हैं। यह बाजा देवताओं के आवाहन, पूजन और उनसे निर्विघ्न कार्य होने की अपेक्षा करता है। पंडौं नृत्य रात्रि के प्रथम प्रहर से प्रायः शुरू होता है। ग्रामीण जन खा-पीकर मंडाण के इर्द-गिर्द एकत्र हो जाते हैं।

चौरास बाजा के तुरन्त बाद 'पंडौली' (महाभारत की कथा जानने वाला या लोकगीतों के आधार पर पांडवों की कथा जानने वाला विशेषज्ञ, जो कथा को गा-गाकर सुनाता है) और चाल (नृत्य करने की शैली) की मांग करता है।

'चाल मांगना' नृत्य शैली की बारीक कड़ियों को समझना है। ढोलसागर शब्द का गम्भीर शास्त्र है जिसकी उत्पत्ति शिव के द्वारा बताई जाती है।

ढोली, ढोल बजाकर देवता-विशेषज्ञों के सम्मान में शब्द बजाता है। वह ढोल बजाने में इतना पटु होता है कि जीवन की हर गति को नृत्य एवं संगीत की कड़ियों में बांध देता है। इसीलिए लोक में 'ढोली-बाजगीर' की, नृत्य प्रारम्भ होने से पूर्व पूजा होती है। ऐसा सम्मान कला का सम्मान माना जाता है। शिव रूप में 'ढोलिया' की पूजा अपने में लोक-जीवन की महती विशेषता है।

पांडवों का जीवन संघर्ष की कहानी है। 'पंडोली' या 'ढोल बाजगीर' के समक्ष लोक भाषा में पांडवों की कथा कहता है। कथा के एक मोड़ पर आकर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वह वादक-ढोली के सामने एक प्रश्न छेड़ता है और कहता है कि उस संघर्ष को पांडवों ने किस तरह पार किया। उस संघर्ष को पार करने की जो शैली (चाल) पंडौं ने की थी, हे ढोली, तुम उस शैली का बाजा बजाओ।

'ढोली' गौर से कथा को सुनता है और बीच-बीच में ढोल पर थाप देता जाता है। पंडोली जो नृत्य का संचालक भी होता है, प्रायः कान पर अंगुली रखकर पांडवों की वार्ता गाता है। उसका एक हाथ ढोल पर होता है और वह बाजा मांगने (चाल मांगने) के लिए इस प्रकार शुरू करता है—

अमर रयान तेरी राम तोता वाणो···
अमर रयान तेरो हृदय सागर···
अमर रयान तेरी सोवन कनौठी···
अमर रयान यो तामा बिजेसार···
अमर रयान नौ टंका नागर···
अमर रयान सोल टंका ढोल
पिता स्यामदास् ! माता महाकाली !!
लगौ मेरा दास टकनौरी रांसा
जंगुलू की सैंर···

"हे ढोलिया ! तेरी राम के तोते की-सी वाणी अमर रहे। सोने का ढोल जो तामे का बिजेसार है—अमर रहे। नौ टंके का नागर और सोलह टंके का ढोल अमर रहे।

पिता श्यामदास का स्मरण कर, माता महाकाली का ध्यान कर। मेरे ढोलिया ! तू टकनौरी रांसा का बाजा बजा दे, जिस रांसे के कारण बियाबान जंगलों की कठिनाई पांडवों ने कुछ भी नहीं समझी।"

ढोली, मांगी गई चाल को ढोल के 'गिजा-गिजड़ी' के शब्दों से प्रारम्भ होता है। जैसे ही बाजा बजता है, प्रायः सभी नर्तक गोल घेरे में आकर बाजा-नृत्य या मांग (चाल) के अनुरूप बजने वाले वाद्ययंत्रों के साथ नाचने लगते हैं।

पंडौं नाचते समय कभी-कभी देवता-विशेष भी अपने 'पस्वा' पर आकर नृत्य मांगता है। ऐसी अवस्था में भी पंडोली नृत्य का संचालन करता है। पंडोली देखता है कि कौन देवता अपने 'पस्वा' को चेतनाहीन कर रहा है। वस्तुस्थिति समझने पर धूप-दीप से पूजन किया जाता है और देवता-विशेष का यशगान किया जाता है। यशगान के साथ ही देवता-विशेष का प्रमुख कार्य वार्ता रूप में बता कर पंडोली गा-गाकर देवता के 'पस्वा' को देवता की भावभूमि में उतार देता है। कंचन के साथ 'पस्वा' उसी तरह नृत्य करने लगता है। विशेष चाल मांगने पर अन्य नर्तक भी उसी तरह नाचने लगते हैं।

यहां विशेष चाल से हमारा तात्पर्य पंडौं (पांडव) देवताओं की विशेष रुचि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से है। भीम बहुत बहादुर गदा प्रेमी वीर हैं, भयंकर और अंड-बंड से युद्ध करने वाला है। जब वार्ता में भीम का नर्तन होगा तो नृत्य भी भयंकर, अंड-बंड ढंग से चलेगा। पांडव नृत्यों में 'भीम की रिंगौण' ऐसा ही नृत्य है।

पांडव नृत्य महाभारत के सम्पूर्ण आख्यानों के नृत्य गीतों के आधार पर सम्पन्न किये जाते हैं। पांडव नृत्य प्रारम्भ करने से पूर्व पांडवों की आत्मा को मंडाण में आने के लिए आहूत किया जाता है। ढोल दमाऊं के वादक 'न्योता' का बाजा बजाते हैं। पंडोली या पुजारी अथवा पुरोहित मंगलाचरण गाता है। पांडवों का आवाहन किया जाता है।

गांव के पास ही पांडवों का मंदिर होता है। उसमें शालिग्राम की तरह के पत्थरों के पांडव स्थापित होते हैं। उन शालिग्राम रूपी पांडवों की पूजा की जाती है और उन्हें प्रसन्न करने हेतु मंडाण में आने के लिए मांगल गीतों के साथ आमंत्रित किया जाता है। पांडवों का नृत्य मार्गशीर्ष के महीने में होता है। यह महीना इस प्रकार के स्वच्छन्द नृत्यों के लिए इसलिए भी उपयुक्त रहता है कि इस समय फसलें कट जाती हैं और खेती का कोई काम नहीं होता। मौसम भी ठंडा रहता है। पहाड़ों की सर्दी में पांडवों का नृत्य नई उमंग और प्रेरणा करने का काम करता है।

पांडव नृत्य में युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव और द्रौपदी मुख्य पात्र होते हैं। कुन्ती और कल्या लोहार भी नृत्य में सम्मिलित हो जाते हैं। पात्रानुकूल पांडवों के 'पस्वाओं' की वेश-भूषा रहती है। युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल और सहदेव के हाथ में तीर-कमान तथा भीम के हाथ में गदा होती है। द्रौपदी के हाथ में एक पाटी होती है जिसमें गीता का यह श्लोक लिखा होता है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

अर्थात्, हे भारत ! जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब ही मैं अपने आप सृष्टि करता हूं अर्थात् पृथ्वी पर अवतरित होता हूं।

द्रौपदी, इस पाटी की मूठ को दाहिने हाथ से पकड़कर नाचती है। पांचों पांडव गाथा के नृत्यगीत के अनुसार धनुष-बाण चलाकर अभिनयात्मक नृत्य प्रस्तुत करते हैं। वीर अभिमन्यु भी बीच में आकर नृत्य करता है। चक्रव्यूह भेदन के अवसर पर अभिमन्यु का नृत्य देखने योग्य होता है।

कुन्ती का प्रवेश नृत्य में तभी होता है जब गाथा में पांडवों के ऊपर कोई संकट पड़ता है या उन्हें कोई सीख देनी होती है।

'कल्या लोहार' भी पांडव नृत्य की सनेसी (संडेसी) लेकर भावात्मक नृत्य करता है। गढ़वाल में यह जनश्रुति है कि पांडवों की अणुशाला का मुख्य कार्याधिकारी कल्या (कलुवा) लोहार गढ़वाली था। उसी ने पांडवों के लिए हथियार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बनाये थे। कल्या लोहार जहां हथियार बनाता था, वह स्थान अणुशाला के नाम से ख्यात था। आज भी लोहार गढ़वाल में हथियारों का निर्माण करते हैं और अणुशाला में काम करने से पूर्व कल्या लोहार को नमस्कार करते हैं। गढ़वाल में आज भी लोहार की कर्मशाला को 'अणस्लो-अणसालो' कहते हैं। यह अणुशाला का ही अपभ्रंश रूप है। गढ़वाल के लोहार आज भी कल्या लोहार को अपना पुरखा मानते हैं और उसकी पूजा करते हैं। कल्या की आण पड़े गढ़वाल में प्रसिद्ध है।

पांडव नृत्य में युधिष्ठिर सबसे आगे नाचते हैं, उनके पीछे-पीछे भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव नाचते हैं। द्रौपदी बीच में घूम-घूम कर नाचती है। कुंती जब प्रवेश करती है तो वह युधिष्ठिर के आगे आकर नाचती है और उनको सम्बोधित करती हुई गाथा के अनुसार अभिनयात्मक नृत्य करती है।

पांडवों की वेशभूषा राजसी ढंग की होती है। चमोली क्षेत्र में पांडव नृत्य के नर्तकों के लिए बहुत ही आकर्षक ढंग से वस्त्र सिलाये जाते हैं और शस्त्र तैयार किये जाते हैं।

पांडव अलग भी नाचते हैं और कभी उनके साथ दर्शकगण भी गाथा के अनुसार नृत्य में भाग लेते हैं। ढाईजूली, बालीकंडारस्यूं और चोपड़ाकोट क्षेत्र में पांडव नृत्य के अवसर पर पांडव नृत्य में दक्ष व्यक्ति ही भाग लेते हैं। गाथा के अनुसार नर्तक पांडवों जैसा युद्ध का नृत्य करते हैं। गढ़वाल में पांडव नृत्य की कई शैलियां मिलती हैं।

पांडव नृत्य पूरे मार्गशीर्ष (मंगसीर-मार्गसीर) महीने में चलते रहते हैं। सारे महाभारत की कथा के अनुसार गढ़वाली गाथाओं में जो नृत्यगीत होते हैं, उन्हीं के अनुसार पांडवों के नृत्य अलग-अलग ढंग से सम्पन्न किए जाते हैं।

अंतिम दिन, पांडवों का विशेष पूजन होता है और सारे गांव का सम्मिलित भोज किया जाता है। पांडवों के साथ गांव के अन्य देवताओं का भी पूजन किया जाता है। पांडवों की आत्मा को विदा करने के लिए गांव के सभी लोग एकत्र होते हैं और उनकी विदाई के साथ गढ़वाली प्रथानुसार भेंट, पिठाई (टीका) और वस्त्रादि की विशेष भेंट दी जाती है। उन्हें आगामी वर्ष के लिए पुनः निमंत्रण देकर विदा किया जाता है। विदा के अवसर पर गांववालों की तरफ से बाजों को बजाया जाता है।

पांडव नृत्य आरम्भ करने से पूर्व पंडोली या औजी लम्बी सुर-ध्वनि में पांडवों की जन्म-कथा को आरम्भ करता हुआ कहता है कि इस धरती पर पाप बढ़ गया है, अतः पांडव जन्म ले लें और धरती में धर्म की बेलि को बढ़ाएं—

परगट ह्वैं जान, परगट ह्वैं जान,
परगट ह्वैं जान, पांच भाई पंडऊं
परगट ह्वैं जान कोन्ती माता,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परगट ह्वै जान रोणी द्रोपता ।
कोन्ती माता होली पंडौं की माता,
नंगों कू बस्तर देंदी, मूकों कू अन्न ।
नंगों देखीक वस्त्र नी लांदी,
भूकों देखीक खाणू नी खांदी ।
कोन्ती माता होली धर्मयाली माता,
बार बरस तैं करदी रै दुर्वासा की सेवा,
तब रिषि दुर्वासा परसन्न ह्वै न,
कोन्ती माता तैं पुत्र वरदान दीने ।
तेरा पांच पुत्र होला छेतरी माल,
काटीक नी कटोन मारीक नी मरोन ।
तब पांच मंत्र रिषी न दीन्या ।
रण लैगे कोन्ती तव मैत घर ।
एक दिन धर्म्याली तीर्थ नहेन्दी,
सूरज तैं वा पाणी चढ़ौंदी ।
मंत्र जाप करे तव वीन,
प्रभु की लीला छई, कर्ण पैदा ह्वै न ।
बार वर्ष पढ़े मातान धर्म मंत्र,
धर्म मंत्र पढ़ीक ह्वै गैन धर्म राज ।
बार वर्ष पढ़े मातान वायु मंत्र,
पैदा ह्वै न तब बली भीमसण ।
बार वर्ष करे मातान इंद्र को जाप,
पैदा ह्वै गैन हां जी, अर्जुन धनुर्धारी ।
तब बार वर्ष पढ़े मातान पांडु मंत्र,
त पैदा ह्वै न नकुल कुंवर ।
बार वर्ष पढ़े माता ने ब्रह्म मंत्र,
पढ़ीक कनो ह्वै गे सहदेव ब्रह्म ।
पांच पुत्र पंडौं छा कोन्ती का,
धरती की शोभा छया, देवतौं माण्यां ।
धर्मराज युधिष्ठिर होला धर्म का ज्ञानी,
जौन गरीब नी संतायो, बुरो नी मण्यायो ।
बंध्या रैन जु धर्म की डोरी,
धर्मराज होला सत का पुजारी ।
अरजुन राजा होल वीर भारी,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कृष्ण रैन वैका रथ का सारथी ।
वैका बाण बैरियों का काल,
वैको गुस्सा जिदड़ी को ज्यान ।
कनो होलो स्यो वीर विभीषण,
सौ मण की गदा होली नौ मण की ढाल ।
आगी को खलाड़ी होलो वीर,
ऐड़ी हत्यारी को पैरवारी ।
जंगल जंगल, भाबर, भाबर,
होईन वीरु तुमकू प्यारा ।
बार मास रये बणवासी जोग,
कंद मूल खैक दिन बितैन ।
दुरजोधन छयो कौरव राजा,
हस्तिनापुर को राज पंडौं नी देन्दू ।
छोरा-छापर-सी तब पंडौऊं,
बणू बणू रीटदा छा लूकी-लूकीक ।
ऊंक तैं घाम नी छौ, नी छौ पाणी,
पेट की नी छै रुड़ी सी बणांग,
भूक नी छै, तीस ऊंकू ।
घूमदा-घूमदा तब गैन पांचाल देश,
द्रुपद राजा की छै तख एक नौनी ।
राजौं की नौनी छै, देखणी दरसनी,
रूप की छलार तै, ज्वानी उलार ।
राजा द्रुपद न राजौ भेजीन परवाना
अर्जुन का पास गैन तब व्यास जी ।
सुणा सुणा पंडऊं पांचाल देश मा ।
छ द्रोपती स्वयम्बर ।
बामण का भेष मा छया पांच पांडव ।
पौंछी गैन द्रुपद का राज मां ।
वै पांचाल देश में आयां छया राजा,
राजा कर्ण छयो, जरासंध, शीशपाल ।
वै द्रुपद गढ़ मा छयो लोखर को खंभा,
तै खंभा का पेंच घरीं छई एक माछी
नीस बिटे एक तेल की चासण ।
राजा द्रुपद तब मना बोदो बैन—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जो बालो, बेधलो तैं माछी की आंखी
वै कुंवर तैं धूंलो मैं दुरपता को डोला ।
जु छाति का बालुन कीवाड़ खोल लो,
ओ माल लिजालो दुरपता को डोला ।
जो थाम्लो सौ मण को गोला जोंखों मा,
वे कु विवीण मैंन रार्जाकिवली अपणी ।
तैं तेल की चासण जो बवोती खेलली,
वे राजा ध्यूंलो मैं दुरपता लाडली ।
देस देस का रजा उठीन शग्ति अजमौण,
कैन माछी की आंखी बेधी नी सकी ।
तब द्रुपद राजान क्षेत्री हंकारीन,
छेत्री हंकार चढ़े वीर अर्जुन ।
भेदी दिने वैन माछी की आंखी ।
तब राणी दुरपती जैमाला अगास फेंकदे,
जैमाला रींगीक ऐ गए अर्जुन का गला ।

"—प्रकट हो जाओ, प्रकट हो जाओ, प्रकट हो जाओ पांच भाई पांडवो। प्रकट हो जा तू कुंती माता, प्रकट हो जाओ द्रौपदी रानी। पांडवों की माता कुंती थी, नंगों को वस्त्र देती है, भूखों को अन्न, नंगों को देखकर वस्त्र नहीं पहनती, भूखों को देखकर भोजन नहीं करती। कुंती धर्मात्मा माता थी। बारह बरस तक वह दुर्वासा ऋषि की सेवा करती रही। तब दुर्वासा ऋषि प्रसन्न हुए। उन्होंने कुंती माता को पुत्र वरदान दिया। तेरे पांच पुत्र मल्ल क्षत्रिय होंगे। वे काटने पर भी न कटेंगे, मारने पर भी न कभी करेंगे। तब ऋषि ने उसे पांच मंत्र दिए। कुंती तब मायके में ही रहती थी। एक दिन वह पुण्यात्मा तीर्थ में स्नान कर रही थी, उसने सूर्य को अर्घ्य चढ़ाया। मन्त्र जाप किया उसने। प्रभु की लीला थी, कर्ण पैदा हुआ।

तब बारह वर्ष तक माता ने धर्म मंत्र जपा, धर्म मंत्र से तब धर्मराज पैदा हुए। बारह वर्ष तक माता ने वायु मंत्र पढ़ा, तब बली भीमसेन उत्पन्न हुए। बारह वर्ष तक माता ने इन्द्र का जाप किया, तब अर्जुन धनुर्धर पैदा हुए। तब माता ने बारह वर्ष तक पांडु मंत्र पढ़ा, तो नकुल कुमार पैदा हुए। बारह वर्ष तक माता ने ब्रह्म मंत्र पढ़ा, पढ़कर सहदेव ब्रह्म पैदा हुआ। कुंती के पांच पुत्र पांडव थे, वे धरती की शोभा थे, देवताओं के मान्य थे। धर्मराज युधिष्ठिर धर्म के ज्ञानी थे, जिन्होंने दीन को नहीं सताया, किसी का बुरा नहीं चाहा। जो धर्म की डोरी से बंधे रहे, धर्मराज सत्य के पुजारी थे। अर्जुन बड़े वीर थे, कृष्ण जिनके रथ के सारथी रहे। उनके बाण बैरियों के काल थे, उनका क्रोध जीवन का नाश था। वीर भीमसेन ऐसा था,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सौ मन की उसकी गदा थी, नौ मन की ढाल। वह वीर आग का खिलाड़ी था, अस्त्रों-शस्त्रों का वस्त्रधारी था।

वन-वन भावर-भावर, तुम्हें प्यारे हुए वीरो। बारहों मास वनवासी योग रहा, कन्दमूल खाकर तुमने दिन बिताए। दुर्योधन कौरवों का राजा था। हस्तिनापुर का राज्य उसने पांडवों को नहीं दिया। तब अनाथ मातृ-पितृ हीनों की तरह पांडव, छिप-छिपाकर, वन-वन भटकते रहे। उनके लिए धूप न रही, पानी न रहा, पेट की ग्रीष्मकालीन वनाग्नि न रही, न भूख रही, न प्यास रही। घूमते-घूमते तब वे पांचाल देश पहुंचे, द्रुपद राजा की वहां एक लड़की थी। दर्शनीया राजकुमारी थी, रूप की आभा थी वह, यौवन की उमंग थी। राजा द्रुपद ने राजाओं को निमंत्रण भेजे, व्यास जी अर्जुन के पास आए—सुनो-सुनो पांडवो! पांचाल देश में, द्रौपदी का स्वयंवर है। पांचों पांडव ब्राह्मण के वेश में थे, द्रुपद के राज्य में पहुंचे। उस पांचाल देश में कई राजा आए थे, राजा कर्ण था, जरासंध, शिशुपाल था। उस द्रुपद गढ़ में एक लोहे का खम्भा था। नीचे से तेल की एक कड़ाही थी। राजा द्रुपद ने तब ऐसे वचन कहे, जो पुरुष उस मछली की आंख बेधेगा, उस कुमार को मैं द्रौपदी की डोली दूंगा। जो छाती के बालों से किवाड़ खोलेगा, वह मल्ल द्रौपदी की डोली ले जाएगा, जो सौ मन का गोला मूंछों में थामेगा, उसे मैं अपनी राजकमलिनी ब्याहूंगा। जो इस तेल की कड़ाही में गोता मारेगा, उस राजा को मैं लाडली द्रौपदी दूंगा। देश-देश के राजा शक्ति अजमाने उठे, कोई भी मछली की आंख न बेध सका। तब द्रुपद राजा ने क्षत्रियों को ललकारा—तब वीर अर्जुन को क्षत्रिय का अहंकार चढ़ा। उसने मछली की आंख बेध दी, तब रानी ने जयमाला शून्य में फेंकी, जयमाला घूमकर अर्जुन के गले में पड़ गई।"

पांडवों की इस तरह की नृत्यमयी पूजा को 'पंडवार्त' अर्थात् पांडव कहा जाता है। पांडवों का हिमालय से विशेष सम्बन्ध रहा है। कहा जाता है कि पांडवों का जन्म पांडुकेश्वर में हुआ था। स्कन्दपुराण और महाभारत दोनों ग्रंथों में पांडुकेश्वर का वर्णन मिलता है। महाभारत के उद्योग पर्व में एक आख्यान आता है कि हिमालय के इस क्षेत्र में अर्जुन, कुबेर से राजसूय यज्ञ के लिए धन मांगने आये थे। गढ़वाल की लोक-कथाओं में इस घटना का सुंदर वर्णन मिलता है।[1] पुराणों में तो यह बात स्पष्ट है ही कि पांडव अपने जीवन के अन्तिम दिनों में इस क्षेत्र में रहे थे। केदार में शिव के दर्शन उन्हें पशुपति के रूप में हुए थे। यहीं से वे स्वर्गारोहिणी गये थे। गढ़वाल के कई मन्दिरों का निर्माण पांडवों के द्वारा किया गया बताया जाता है। यह बात सत्य है कि कृष्ण की तरह पांडव भी गढ़वाल में बहुत लोकप्रिय रहे हैं। हिमालय के हिमाचल प्रदेश से कुमाऊं के क्षेत्र तक पांडवों का प्रभाव आज

---

1. [illegible] गैरोला : हिमालय की लोक कथाएं, पृ० 138

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी देखने को मिलता है ।

गढ़वाल के जौनसार बाबर से मिले फतेहपर्वत, बंदरपूंछ, हर की दून के इक्कीस गांवों में कौरवों की पूजा होती है । यह क्षेत्र बन्दरपूंछ पर्वत की तलहटी में और फतेहपर्वत क्षेत्र में आता है । इन गांवों में आज भी दुर्योधन और कर्ण की पूजा होती है और उन्हें नचाया जाता है । पांडवों का नाम लेना भी इस क्षेत्र में बुरा माना जाता है । इस विशिष्ट उदाहरण से यह बात और भी प्रमाणित हो जाती है कि गढ़वाल के इस क्षेत्र में पांडवों का, उस घाटी में कौरवों का प्रभाव रहा होगा । महाभारत में एक जगह उल्लेख आया है[1] कि हिमालय के दुर्गों में निवास करने वाली किरात जाति के लोगों को कर्ण ने दुर्योधन के लिए विजित किया था । शायद इस (इक्कीस गांवों के आज के क्षेत्र में) क्षेत्र में किरात रहते होंगे । इन गांवों में दुर्योधन के मंदिर हैं । जखोल के मंदिर में दुर्योधन की 'उरु भंग' वाली मूर्ति स्थापित है । ऐसा लगता है कि घायल अवस्था में दुर्योधन इस क्षेत्र में अपने कुछ सेवकों के साथ रहने लगा होगा । यह भी सम्भव है कि जिस तरह पांडव स्वर्गारोहिणी से स्वर्ग गये थे, वैसे ही दुर्योधन या दुर्योधन के विश्वस्त अनुचर 'यमद्वार' (बंदरपूंछ) के मार्ग से स्वर्ग की ओर बढ़े होंगे ।

गढ़वाल के इन इक्कीस गांवों में केवल दुर्योधन पूजा जाता है । पांडवों के नाम लेने से ही झगड़ा हो जाता है । कभी-कभी आपस में लोगों की लड़ाई तक हो जाती है । महाभारत में एक प्रसंग आता है कि हिमालय के 'खस कौरवों' का पक्ष लेकर सात्यकि की ओर से पांडवों के विरुद्ध लड़ें थे ।[2] यदि इस क्षेत्र के लोगों को 'खस' मानें तो बात समझ में आ जाती है कि उनका पांडवों के साथ बहुत पुराना वैर है । यदि उन्हें किरात जाति का मानते हैं तो भी उनके द्वारा पांडवों का विरोध करना समझ में आता है । अधिकांश लोग इस क्षेत्र को कौरवों द्वारा प्रकाशित क्षेत्र मानते हैं जिसका प्रभाव आज तक बना हुआ है । इसी तरह नैटवाड़ क्षेत्र के 10 गांवों में कर्ण को पूजा और नचाया जाता है । कर्ण के साथ शल्य को भी पूजा और नचाया जाता है । नैटवाड़ के प्रसिद्ध मंदिरों को पोखू अर्थात् किरमिर राक्षस का मन्दिर बताया है । वहां 'पोखू' को देवता के रूप में मान्यता प्राप्त है । नैटवाड़ गांव में ही 'पोखू' का माली रहता है जो क्षेत्र के लोगों की समस्या को हल करने का भी काम करता है । बात जो भी हो, सत्य है, परन्तु यह बात भी सत्य है कि गढ़वाल मंडल के इन इकतीस गांवों को छोड़कर समस्त गढ़वाल में पांडवों का वर्चस्व सर्वाधिक है और उन्हें देव-रूप में भी पूजा और नचाया जाता है ।

---

1. महाभारत : द्रोण पर्व, 417
2. महाभारत : उद्योग पर्व, 160/103. द्रोण पर्व 121/43

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

 Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गढ़वाल में पांडवों के सम्वन्ध में जो जागर नृत्य गीत गाये जाते हैं, उनमें महाभारत की मुख्य कथा का ही अनुसरण होता है। परन्तु, कहीं-कहीं स्थानीय गाथाएं भी इन जागरों में जुड़ी हुई मिलती हैं। ऐसी गाथाओं में एक गाथा अर्जुन और वासुदत्ता की प्रेमगाथा है। यह प्रणय-गाथा पांडव नृत्य का मनोरंजक प्रसंग है। गढ़वाल-कुमाऊं में यह गाथा समान रूप से मिलती है। गीतनृत्य गाथा में वासुदत्ता को नाग-कन्या कहा गया है। अर्जुन ने उसे स्वप्न में देखा और द्रौपदी को सोता छोड़कर नागलोक पहुंच गया। द्रौपदी जब सोकर उठी और उसने पति को कहीं नहीं देखा तो उसने अपनी सास से पूछताछ की। सास ने उल्टे ही उससे कहा कि तुमने ही उसे खा लिया होगा। द्रौपदी को बहुत दुख हुआ। न उसने खाना खाया, न पानी पिया। जब तीसरे दिन अर्जुन नागलोक से लौट आया, तभी उसने अन्न ग्रहण किया। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल इस गाथा को महाभारत के ही स्तर की गाथा मानते हैं। उनका कहना है कि गढ़वाल की यह गाथा नागकन्या उलूपी और अर्जुन की प्रणय-गाथा के आधार पर ही मौलिक ढंग से रची गई होगी।[1]

अर्जुन-वासुदत्ता के प्रसंग को पंडोली बड़े रसीले ढंग से गाता है। अर्जुन-वासुदत्ता और द्रौपदी का कथात्मक नृत्य देखने योग्य होता है। इस प्रसंग का गीत इस प्रकार है—

द्रोपती अर्जुन सेयां छया।[2]
रातुड़ी होये थोड़ा, स्वीणा ऐन भौत
सुपिना मा देखद अर्जुन-
बाली वासुदत्ता नागू की धियाण।
मन ह्वै गे मोहित, चित्त ह्वै गे चंचल।
वीं की ज्वानी मा कनो उलार छौ,
वीं की आंख्यों मा माया को रैबार छौ।
समलीक मुखड़ी वीं की, अर्जुन सोचण लैगे—
कसु कैक जौंलू नागलोक मां।
तैं नागलोक मा नाग होला इसीला,
मुखड़ी का हंसीला होला, पेट का गसीला।
मद पेन्दा हाथी होला, सिंगू वाला खाड़ू,
मरक्वाल्या भैंसा होला, मैं मार्ग औला।

---

1. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : गढ़वाली लोक कथाएं (डा० गोविंद चातक की भूमिका)।
2. डा० गोविंद चातक : गढ़वाली लोक कथाएं, पृ० 75

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लोहा की साबली होली लाल बणाई,
चमकदी तरवारी होली ऊंकी पल्याई।
नागू की चौकी बाड़ होली पैंहरा,
कसु कैंक जौलू मैं तैं नागलोक मा।
कमर कसदो अर्जुन तब उसकारा भरदो।
मैंन मरण बचण नागलोक जाण।
रात को बगत छयो, दरुपदा सेयीं छई,
वैंन कुछ बोल न चाल्यो, चल दिने नागलोक।
मदपेन्दा हाती वैंन चौखालू चीरेन,
लुबा की साबली संगून तोड़ीन।
तब गैं अरजुन वासुदत्ता का पास।
तब देखी वासुदत्ता हाम से हाम
घाम से घाम, पूनो जसो चाम।
नौणीवालो नामो, जीरी वालो पिंड,
सुवर्ण तरुणी देई, चंदन की लता,
पाई पतन्याली, आंखी रतन्याली,
हीरा की सी जोत, जोन सी उदोत।
तब गैं अरजुन सोना रूप बणी,
वासुदत्ता वो उठीक बैठाये अर्जुन,
वीं को मन मोहित होई गये—
तब वींन जाण नी दिने घर वो—
तू होलो अर्जुन, मेरो जीवन संगाती,
तू होलो भौंर, मैं होलू गुलाबी फूल,
तू होलो पाणी, मैं होजु माछी—
तू मेरो पराण छई, त्वै मैं जाण न देऊं।
तब तखी रैगे अरजुन कई दिन तई,
जैंतीवार मा दुरपदा की निंदरा खुले,
अर्जुन की सेज देखे वींन-कख गैहोला नाथ ?
जांदी द्रुपदा कोन्ती मात का पास—
हे सासु रौल तुमन अपणू बेटा भी देखे ?
तब कोन्ती माता कनो स्वाल देन्दी—
काली रूप धरे अर्जुन तिन भक्ष्याले,
अर मैंमू सच्ची होण क आई गए।
तब कड़ा बचन सुणीक दुराती।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दणमण दणमण रोण लगदे ।
तब जांदे दुरपती बाणूं कोठड़ी,
बाण, मुट्ठी बाण, तुमन अर्जुन भी देखे ।
तब बाण बोदान, हम त सेयां छा,
हमून नी देखे, हमून नी देखे ।
औंदा मनखी पूछदौ दुरपता,
जांदा पंछियो—तुमन अर्जुन भी देखे ।
रोंदी छ बरांदी तब दुरपता राणी,
जिकुड़ी पर जना चींरा धरी होन ।
तीन दिन होईन वींन खणो नी खायो,
लाणो नी लायो ।
तब औंद अर्जुन को रुगुनी कागा—
तेरो स्वामी दुरपती, ज्यूंदो छ जागदो ।
नागलोक जायूं छ, वासुदत्ता का पास ।
तब दुरपता को सांस ऐगे,
पर वासुदत्ता को नौ सुणीक वा
फूल-सी मुरझैगी, डाली-सी अलसंगी ।
तबरेक रमकदो छमकदो—
अर्जुन घर ऐगे ।

"—अर्जुन और द्रोपदी सोये हुए थे, रात थोड़ी ही बीती, पर सपने बहुत आने लगे। सपने में अर्जुन ने नागों की बहन वासुदत्ता को देखा। अर्जुन का मन चंचल हो गया, वह उस पर मोहित हो गया। उसके यौवन में उछास था, उसकी आंखों में प्रणय का सन्देश था। उठा तो अर्जुन उसका रूप याद कर सोचने लगा—नागलोक किस तरह जाऊं ? उस नागलोक में डंसीले नाग होंगे, मुख से हंसते होंगे, हृदय से कपटी, मदमाते हाथी होंगे, सींगों वाले भेड़े होंगे, मरकहा भैंसे होंगे, वे मुझे मारने आयेंगे। वहां लाल की हुई लोहे की सलाखें होंगी, उनकी चमकती तलवारें तेज कर रखी होंगी। नागों की चौकी पर घेरा, पहरा होगा। उस नाग-लोक में कैसे जाऊं ?"

तब अर्जुन ने कमर कसी, उसांसें लीं—मैं मरूं चाहे बचूं, मुझे नागलोक में जाना है। रात का समय था, द्रौपदी सोई थी, वह बिना बोले, नागलोक चल दिया। मदमाते हाथियों को उसने चारों दिशाओं में चीर दिया, लोहे की सलाखों को नाखूनों से तोड़ दिया। तब अर्जुन वासुदत्ता के पास गया। उसने वासुदत्ता को देखा—वह कंचन प्रभा थी, स्वर्गीया थी, पूनो जैसी उसकी त्वचा थी। नवनीत के समान कोमल थी, जीरी चावल के ग्रास-सी सुन्दर। उसकी टांगें पतली थीं,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आंखें रतनारी थीं। वह हीरक-ज्योति थी, शशि की भांति उज्ज्वल थी।

तब अर्जुन सुवर्ण रूप धारण कर उसके पास पहुंचा। वासुदत्ता ने उसे उठकर बिठाया, और फिर उसे घर नहीं जाने दिया—हे अर्जुन, तू मेरा जीवन साथी है, तू मेरा भौंरा है, मैं तेरा गुलाब का फूल। तू पानी है, मैं मछली। तू मेरा प्राण है, तुझे मैं जाने नहीं दूंगी। तब अर्जुन कई दिन तक रह गया। पांडव राज्य में तब द्रौपदी की निद्रा टूटी। उसने अर्जुन की शय्या देखी—नाथ, कहां गए? तब द्रौपदी कुन्ती के पास गई—हे सास जी, तुमने अपने पुत्र को भी देखा है? तब कुन्ती माता कैसा उत्तर देती है—काली का रूप धारण कर तूने अर्जुन को भक्ष लिया है और मेरे पास सच्ची होने के लिए चली आई। तब कड़ुवे वचन सुनकर द्रौपदी, टपटप आंसू गिराने लगी। तब द्रौपदी शस्त्रागार में गई—हे हस्त बाणो, क्या तुमने अर्जुन को देखा है? तब बाणों ने कहा—हम तो सोये थे, हमने नहीं देखा, हमने नहीं देखा है। तब द्रौपदी हर आते पथिक से, उड़ते पक्षी से पूछती—तुमने अर्जुन को देखा? तब द्रौपदी रानी रोती-बिलखती है, जैसे किसी ने उसके हृदय पर कई चीरे रखे हों।

तीन दिन हो गये, उसने भोजन नहीं किया, शरीर पर नया वस्त्र नहीं पहना। तब अर्जुन का सगुनी कागा आया—द्रौपदी, तेरा स्वामी जीता-जागता है। वह वासुदत्ता के पास नागलोक गया है। तब द्रौपदी की सांसें लौट आईं, पर वह वासुदत्ता का नाम सुनकर फूल-सी मुरझा गई, डाली-सी कुम्हला गई। इसी बीच धीरे-धीरे चलता हुआ अर्जुन भी घर लौट आया।

पांडव नृत्य में गैंडे का शिकार करने का एक प्रसंग आता है। यह नृत्य अत्यन्त कौतुकपूर्ण और मनोरंजन-प्रधान होता है।

एक कद्दू (सीताफल) पर लकड़ी की चार टांगें लगाकर गैंडे के रूप में मंडाण के बीचोंबीच रखा जाता है। पांचों पांडव उस गैंडे के चारों तरफ शिकार करने का अभिनयात्मक नृत्य प्रस्तुत करते हैं। इस नृत्य के समय पंडोली एक कथा कहता है कि कुन्ती माता को स्वप्न आता है कि पांडु के श्राद्ध के लिए गैंडे की खाल चाहिए। उसने अपने पुत्रों को स्वप्न के विषय में बताया और उन्हें आदेश दिया कि वे जंगल में जाकर गैंडे को मारें और उसकी खाल लाकर अपने पिता का श्राद्ध करें। कुन्ती माता की आज्ञा के अनुसार पांचों भाई आखेट करने जाते हैं। घनघोर वन में शिकार कैसे करते हैं, इसका ही सुन्दर अभिनयात्मक नृत्य इस नृत्यमयी गाथा में प्रस्तुत किया जाता है—

कोन्ती माता सूपिनो ह्वै गए, ताछुम ताछुम।
पांडु का सराधकु चैंद गैंडो, ताछुम ताछुम।
ओडू आवा नेडू मेरा पांच पंडाऊं ताछुम ताछुम।
तुम जावा पंडऊं गैंडाना कि खोज ताछुम ताछुम।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सराध क चैंद पंडौं, गैंडा की खाल ताछुम ताछुम।
तब पैड्या पंडौं, गैंडा की खोज ताछुम ताछुम।
नारी दुरपता तप कना बैंन बोदा ताछुम ताछुम।
मैं भी मेरा स्वामी संगमांग औंदू ताछुम ताछुम।
भूख लगली मैं भोरजन ह्वै जौलो ताछुम ताछुम।
प्यास लगली, मैं जल ह्वै जौंलो, ताछुम ताछुम।
ऊकाल लगली मैं लाठी बणी जौलो, ताछुम ताछुम।
पसीना होली स्वामी रुमैल ह्वै जौलो ताछुम ताछुम।
सेज की बगत मैं नारी होई जौलो, ताछुम ताछुम।
जुद्ध लगलौ मैं कालिका होई जौंलो, ताछुम ताछुम।
त्वैकु नी होलू मेरी नारी, भूषण बस्तर, ताछुम ताछुम।
तू घर रैली बैठीं दुरपता ताछुम ताछुम।
तब घूमदा गैन पंडऊं गैंडा की खोज ताछुम ताछुम।
ऐ गैन पंडऊं हरियाली का ताल ताछुम ताछुम।
वख देखी तौंन, सीतारामी गैंडो ताछुम ताछुम।
तब सीतारामी गैंडी कना बैंन बोदी, ताछुम ताछुम।
मैं छऊं पंडौ, जनानी की जात, ताछुम ताछुम।
मैं मारी तुमारो, काम नी होण को ताछुम ताछुम।
तुम जावा पंडो, गागली का बण, ताछुम ताछुम।
मेरो स्वामी रैंदो, वख स्वामीपाल, ताछुम ताछुम।
तब गैन पंडौं, गागली का बण ताछुम ताछुम।
गैंडा को ग्वेर, छयो नागार्जुन, ताछुम ताछुम।
मालू ग्वीरयाल मेरो गैंडो नी खांदो ताछुम ताछुम।
पीली छचरी, मेरा खैंडाकु चैंदी, ताछुम ताछुम।
तब मारे पंडौ न स्वामीपाल गैंडो, ताछुम ताछुम।
तब गाड़े पंडौन, गैंडा की खगोती, ताछुम ताछुम।

—"कुन्ती माता को सपना हुआ कि पांडु के श्राद्ध के लिए गैंडा चाहिए। मेरे पांचों पांडवो, मेरे पास आओ, पांडवो तुम गैंडे की खोज में जाओ, श्राद्ध के लिए गैंडे की खाल चाहिए। नारी द्रौपदी तब ऐसा कहती है। मैं भी स्वामी के साथ जाऊंगी, तुम्हें भूख लगेगी तो मैं भोजन बनूंगी और प्यास लगेगी तो मैं पानी बनूंगी। चढ़ाई लगेगी तो मैं हाथ की छड़ी बनूंगी। पसीना होगा तो मैं रुमाल बन जाऊंगी। शय्या के समय मैं सहवासिनी बन जाऊंगी। युद्ध जुड़ेगा तो मैं कालिका बन जाऊंगी। तेरे पास रानी, भूषण-वस्त्र नहीं हैं, इसलिए द्रौपदी तुम घर ही बैठी रहो। तब पांडव गैंडे की खोज में घूमते रहे। पांडव तब हरियाली

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के ताल आये। वहां उन्होंने सीतारामी गैंडी देखी। तब सीतारामी गैंडी ऐसे वचन कहती है। पांडवो, मैं मादा हूं, मुझे मारकर तुम्हारा काम नहीं बनने का। पांडवो तुम गागली के वन जाओ। वहां मेरा स्वामी स्वामिपाल रहता है। तब पांडव गागली के वन गये, वहां गैंडे का चरवाहा नागार्जुन था। मेरा गैंडा मालू और ग्वीराल के पत्ते नहीं खाता। मेरे गैंडे के लिए पीली छचरी चाहिए। तब पांडवों ने स्वामिपाल गैंडे को मार दिया। तब पांडवों ने गैंडे की खाल निकाली।"

इस गाथा में नारी की चारित्रिक विषमता के दर्शन होते हैं। एक तरफ द्रौपदी एक ऐसी नारी है जो कि भूख में भोजन, प्यास में पानी, चढ़ाई पर लाठी तथा युद्ध में काली बनने का आश्वासन देकर पतियों के प्रति अपना अगाध पति-प्रेम व्यक्त करती है और दूसरी ओर अपनी प्रकृति की सीतारामी गैंडी है जो यह समझती है कि पांडवों को गैंडे की खाल चाहिए, फिर भी अपने पति का पता बता देती है। गाथा में कहीं पर भी नहीं दिखाया गया है कि गैंडी ने पांडवों को अलौकिक शक्ति मानकर इतना त्याग किया कि अपने को ही बचाने के लिए अपने पति से विश्वासघात किया।

पांडव नृत्यों में एक प्रसंग पांडव पुत्र गोविंद का भी होता है। इस गाथा नृत्य में 'गोविन्द और विसल्या' के प्रेम की कथा कही जाती है। गढ़वाल के पांडव नृत्यों में यह एक मौलिक स्थानीय रचना आ गई है।

इन नृत्यों में कौरव-पांडवों का पारस्परिक वैमनस्य और महाभारत के युद्ध के भीषण चित्र भी प्रस्तुत किये जाते हैं। युद्ध के प्रसंग पर पांडवों का नृत्य-कौशल देखने ही योग्य होता है।

रवांई क्षेत्र के प्रस्तुत नृत्यगीत में महाभारत के युद्ध का कारण एक चाम की डाली को बताया गया है—

डाली बड़ी स्वरीग नैंगी, डाली बड़ी स्वरीग नैंगी,
कौरों बोद डाली हमारी, कौरों बोद डाली हमारी।
पंडौं बोद डाली हमारी, पंडौं बोद डाली हमारी।
कौरों पंडौं को झगड़ा लैंगी, कौरों-पंडौं को झगड़ा लैंगी।
डाली होली कौरों की, खून लग्या धारी।
डाली होली पंडौं की, दूध भर्यां पारी (बारी)।
डाली दूखू लैंगी तोणण, डाली दूखू लैंगी तोणण।
डाली लैंगी दूध की धारी, डाली लैंगी दूध की धारी।
पंडौं बोद डाली हमारी, पंडौं बोद डाली हमारी।
कौरों-पंडौं को जुध लैंगी, कौरों-पंडौं को जुध लैंगी।

—"(चाम का) पेड़ बड़ा होकर आसमान को छूने लगा है। कौरव कहते हैं कि यह पेड़ हमारा है और पांडव कहते हैं कि यह पेड़ तो हमारा है। (इसी पर)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कौरव-पांडवों में झगड़ा हो गया। (निर्णय हुआ) कि यदि पेड़ कौरवों का होगा तो उसमें से खून टपकेगा और यदि पेड़ पांडव का होगा तो बर्तन (बारी या पारी) दूध से भर जायेगा। दोनों पेड़ के पत्तों को तोड़ने लगे। पेड़ से दूध की धार बहने लगी। इस पर पांडवों ने कहा—पेड़ हमारा है। कौरवों ने फिर भी कहा कि पेड़ हमारा है। इस पर कौरव-पांडवों का युद्ध हो गया।"

दोनों के राज्यों की सीमा पर उगे एक पेड़ के कारण महाभारत का युद्ध हुआ। यह गाथा गढ़वाल की मौलिक चिन्तन की ओर इशारा करती है। युद्ध चाहे पेड़ के कारण हुआ हो या न हुआ हो परन्तु इससे यह बात स्पष्ट होती है कि बड़े-बड़े युद्धों का कारण एक छोटी-सी बात भी हो सकती है। इतना बड़ा युद्ध वैसे भी देखें तो नगण्य भूमि के अधिकार के लिए हुआ था। दूसरी ओर, इसी से स्पष्ट होता है कि पांडवों का पक्ष इतना प्रबल था फिर भी कौरवों ने उनके साथ अन्याय किया। उनका राज्य छीना। उन्हें अनेक कष्ट दिए। आखिर, न्याय-प्राप्ति के लिए महाभारत का युद्ध होकर ही रहा और पांडवों की विजय होकर रही। सच्चाई की जीत हुई।

पंडौं (पांडवों) का नृत्य महाभारत का नृत्य-नाट्य है जिसको गढ़वाल के औजी-ढोल-दमाऊं की युगल बन्दी में बड़े कौशल से सम्पन्न करते हैं।

पांडव नृत्य की वार्ता वास्तव में महाभारत की कथा है और महाभारत कौरव-पांडवों का इतिवृत्त है। उसमें कई कथाएं आती हैं। गढ़वाली जागर एवं पंडोली गीतों में भी पंडौं का सम्पूर्ण जीवन वार्ता-रूप में आता है, जिसे 'पंडोली', 'भडोली' या औजी गा-गाकर सुनाता है।

कुन्ती का सत, पांडवों का जन्म, द्रौपदी-स्वयंवर, लाक्षागृह में बियाबान जंगलों में, अज्ञातवास में, विराट नगरी में, नाग-कन्या वासुदत्ता को स्वप्न में अर्जुन का देखना, नागलोक जाना, वासुदत्ता को ब्याह कर लाना, युद्ध में भीम का पराक्रम आदि ऐसे प्रसंग हैं, जिनकी कथा वार्ता-रूप में सुनाकर पंडोली नृत्य की चालों (शैलियों) की मांग करता है।

पंडौं नृत्य में वे सभी प्रसंग आकर्षक हैं, जिनसे कथा-वार्ता आगे बढ़ती है। पूर्वार्द्ध में भीम, अर्जुन के वीरता-शूरता-पूर्ण कार्य हैं। युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव के विशिष्ट कार्य हैं। उत्तरार्द्ध में पांडव पुत्र गोविन्द का काल की कुलिन्त्या विसला-रानी के प्रेमपाश में फंसकर दुख भोगने और माता के करुण विलाप की वार्ता है।

वार्ता के अनुसार और नायक-नायिका के अनुरूप नृत्य की चालों (नाच करने की शैलियों) की मांग प्राय: पंडोली द्वारा की जाती है। यह इसलिए भी की जाती है, ताकि नाच में सभी रसों का आनन्द मिल सके। पात्र के अनुरूप उसके नृत्य को मांगना लोकनृत्य की विशेष लचक है। इस तरह पांडव नृत्य में पात्रानुसार कुन्ती बाजा नृत्य, युधिष्ठिर बाजा नृत्य, भीम बाजा नृत्य, अर्जुन बाजा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नृत्य, नकुल बाजा नृत्य, सहदेब बाजा नृत्य और द्रौपदी बाजा नृत्य बजाया जाता है, जो कथा के अनुसार नृत्य में ढल कर आनन्द का सृजन करता है।

पांडव नृत्य करते समय जब पांडव नाच करने वाले थक जाते हैं और बैठ जाते हैं तो उसे 'देवता का धिरना' कहते हैं। जैसे कि पहले कहा गया है कि पांडव नृत्य करने वाले लोग बिना पांडवों के 'पस्वा' बने भी—अद्‌भुत और आकर्षक पांडव नृत्य करते हैं। जब वे एक चाल (शैली) पर नाचने के बाद थक जाते हैं तो कोई आदमी या पंडोली बीच में आकर सुन्दर गीत गाता है और औजी को सम्बोधित करता है कि वह ऐसा बाजा बजाये जिससे मन फूल की तरह खिल उठे। इस प्रकार पंडोली जो वार्ता छेड़ता है या नये ढंग का बाजा नृत्य चाहने की मांग करता है—उसे 'पयाली' गाना कहते हैं। 'पयाली' गाते समय पंडोली अपने दोनों कानों पर उंगली रखकर या एक कान पर उंगली रखकर और दूसरे हाथ से गाथा के अनुसार हाथ को आगे-पीछे करते हुए लम्बी लय में गाता है—

मैं छ्यो मेरा दामी, निंदरा भुल्यूं
अब मेरा दामी, मैं छ्यो सेयों—
झलकार्‌या विस्तरा, घुघराल्यां चारपाई,
अर मेरा दामी, तुइन लगाये मैं पराज—
ढोल का शब्द, नगाड़ू की गूंज,
मैं आयूं यस, धारु रड़ीक, गाडू बगीक,
अमर रयान् भुला, तेरी पन्दर-पच्चीसी,
आज मेरा दामी, तू मैं कू—
फूल-सा खिलै दे-भौंर-सा उड़ै दे।

—"हे दमामा वजाने वाले, मैं नींद में सब कुछ भूला हुआ था। अपने झिलमिलाते बिस्तर और घुंघरू वाली चारपाई पर (सुध-बुध खोये) सोया हुआ था कि तुमने ढोल के शब्द और नगाड़े की गूंज से मुझे स्मरण किया तो मैं पहाड़ों से लुढ़कते हुए और नदियों में बहते हुए तुम्हारे पास आया हूं। मेरे भाई, तेरी पन्द्रह-पच्चीसी की उम्र अमर रहे। भाई, तू आज (वाजा बजाकर और जी भरकर नचाकर), हमें, फूल-सा खिला दे तथा भौंरे की तरह उड़ा दे।"

इस निवेदन के बाद औजी ढोल-दमामा बजाते हैं और नाच आरम्भ हो जाता है। इसी बीच में वार्ता सुनाने वाला कथाक्रम के अनुसार वार्ता सुनाता है। वार्ता सुनाते समय बाजों का बजना और नाच का होना बन्द हो जाता है। वार्ता में चाल (शैली) विशेष की मांग करते ही वाजे उसी के अनुसार बजने लगते हैं और नृत्य पुनः शुरू हो जाता है। इस तरह नृत्य और वार्ता का क्रम निरन्तर चलता रहता है।

पांडव नृत्य आरम्भ करने से पांडवों को जगाया जाता है। इसे 'जाग' या

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'वींद' कहते हैं—

हरी हरद्वार जाग, गांव का भूम्याल जाग
धौली पयाल जाग, क्षेत्र का छितरपाल जाग
गंगोत्री घाट जाग,
भांसरी का ताल जाग,
तैं बदाणी जाग
तैं सातरु जाग
तैं मूलू मुखेम जाग
तैं तलबला सेम जाग
चन्द्र बदनी माता जाग
राज राजेश्वरी नन्दा जाग
खैंटा की अंछरियो (री) जाग
पीड़ी की भरड़ियो (सरड़ी) जाग
बदरी केदार जाग
दूध धारी नाग जाग
धर्म युधिष्ठिर की गादी जाग
अर्जुन को गांडीव जाग
भीम की गदा जाग
सतवन्ती माता कुन्ती जाग
सतवन्ती नारी द्रुपदा जाग
सहदेव की लाठी जाग
नकुल की पाटी जाग
बाला घंड्याल अभेमन्यु जाग
जाग-जाग पंच परमेश्वर जाग

नींद के बाद बींद (जाग) करने हेतु उक्त जागरण गीत गाया जाता है। चेतनावस्था आने पर वार्ता के क्रमानुसार नृत्य हर दिन शुरू किया जाता है। यह बींद (जाग) भी एक प्रकार से 'पयाल' के ही अंतर्गत आती है।

पांडों के नाच में कभी-कभी देवता का या देवी-विशेष की चाल भी मांगी जाती है। वार्ता बखान करने वाला देवता या देवी-विशेष का बाजा बजाने का आग्रह करता है। बाजे के साथ वार्तागीत भी गाया जाता है। पांडव-नृत्य की कुछ प्रमुख बाजा नृत्य शैलियां इस प्रकार हैं—

कुन्ती बाजा नृत्य

कोमल भावना का 'लास्य कोटि' का नृत्य है। कुन्ती अपने परिवार पर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आकर अपने पुत्रों के दुख में दुखी होकर उनके कल्याण की कामना करती है। कुन्ती का 'पस्वा' बैठकर या दिशा-दिशाओं में व्यथित भावना का अभिनय करती हुई नाचती है। ढोली 'गिजा-गिजड़ी' के बोलों से इस नृत्य का संचालन करता है। पंडोली जब कुन्ती माता के लाक्षागृह वाला वर्णन करता है, तो दर्शकों की आंखों से आंसू छूट जाते हैं। कुन्ती मन्थर गति से चलकर कारुणिक अवस्था वाला नृत्य करती है। इसके अलावा कुन्ती नृत्य गीत में वे सभी गीत आ जाते हैं जिनमें कुन्ती अपने पुत्रों को सम्बोधित करती है या कुन्ती के सत से पांडवों का जन्म होता है। पीछे जो दो गीत आये हैं—वे कुन्ती नृत्यबाजा के अन्तर्गत ही गाये जाते हैं—

प्रगट ह्वै जान, प्रगट ह्वै जान
प्रगट व्है जान, पांच भाई पंडऊं।
× × ×
प्रगट ह्वै जान, कुन्ती माता
कुन्ती माता होली, पंडौं की माता
× × ×
कोन्ती माता सूपीनो ह्वै गये ताछुम ताछुम
पांडु का सराधकु चैंद गैंडो ताछुम ताछुम
× × ×
ओडू आवा नेडू मेरा पांच पंडऊं ताछुम ताछुम
तुम जावा पंडऊं गेण्डना कि खोज ताछुम ताछुम

युधिष्ठिर बाजा नृत्य

धर्मराज युधिष्ठिर का नृत्य 'सौम्य अवस्था' का नृत्य है। इस नृत्य में मन की प्रसन्नता के दर्शन होते हैं। उदात्त नाम की कोई भी स्वर लहरी और वाद्य यन्त्रों के स्वरों में कठोरता कहीं नहीं मिलती। नृत्य सम अवस्था में चलता है। प्राय: धनुष-बाण के साथ युधिष्ठिर का 'पस्वा' नृत्य करता है। युद्ध की भयंकरता के समय युधिष्ठिर का मन धर्म भावना की ओर झुका रहता है, जिससे नृत्य में सम गति तो आती है परन्तु चालों में प्रगति नहीं होती। नृत्य में गम्भीरता रहती है परन्तु वार्ता के अनुसार नृत्य अपना स्वरूप बदलता रहता है।

ढोली के ढोल के—'जैंकता तु जक जैंकता ताक'—बोल इस नृत्य से निकलते हैं। धर्मराज युधिष्ठिर के अनेक बाजा नृत्य गीत हैं। एक गीत का उदाहरण प्रस्तुत है—

धर्म का खातिर धर्मराज बनवास गैन
धर्म पालन का खातिर तीन कष्ट उठैन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

धर्म को पालन अर मनख्यूं से प्रेम
धर्मराज का मन मां सदा रैंने नेम
वनवास में अर्जुन एक दिन चलीगे
चित्ररथ-राणी का साथ जल विहार मां मिलीगे
राणी कुमनसी अर राजा चित्ररथ थैं क्रोध चढ़ीगे
देखी नी हमुतैं क्या तू अंधो बणिगे ?
छत्री को हंकार आये, अर्जुन ल बोले—
दिन-दुपरी मां नंगा तुम नैणा छयां—
द्वीयूं को जुध जुड़िगे
अर्जुन, चित्ररथ तैं पकड़ीक धर्मराज का पास लाए
चित्ररथ न हाथ जोड़िक प्राणों की भीख मांगे
वैकी राणी कुमनसी न धर्मराज से सुहाग की भीख मांगे
चित्ररथ थैं मित्र वणैकि
धर्मराज न छोड़ि दिए
धर्म का पालक ह्वैन धर्मराज
धर्म का अवतार ह्वैन धर्मराज युधिष्ठिर
जौंकी छाप पड़ीं च सारा संसार पर—[1]

—"धर्म के पालन करने को धर्मराज वनवास गये। वे हर व्यक्ति से प्रेम करते थे। एक बार अर्जुन वनवास के दिनों में घूमता-घूमता चित्ररथ राजा के क्षेत्र में चला गया। उस समय वह अपनी रानी कुमनसी के साथ जल-विहार कर रहा था। दोनों में वार्तालाप ऐसा हुआ कि भयंकर युद्ध छिड़ गया। अर्जुन चित्ररथ को पकड़कर धर्मराज के पास ले आए। चित्ररथ ने प्राणों की और रानी कुमनसी ने अपने सुहाग की भीख मांगी। धर्मराज ने दया कर उस राजा को मित्र बनाकर छोड़ दिया। धर्मपालक युधिष्ठिर की संसार में ख्याति है।"

भीम बाजा नृत्य

भीम भयंकर युद्ध करने के लिए प्रसिद्ध वीर योद्धा हैं। पंडौं नृत्य में भीम का नृत्य समान गति से कभी नहीं चलता। भीम जब अपने 'पस्वा' पर आकर नाचता है, तब पस्वा जलती हुई भंडाण के भाड़ की अग्नि तक को चवा जाता है, आग पर नाचता है, बड़े-बड़े पेड़ों को उखाड़ कर ले आता है। भीम का (रौद्र भयंकर व वीर रस पूर्ण) नृत्य पंडौं नाच का आकर्षण होता है। भीम की 'रिंगौण' भीम बाजा नृत्य का विशेष आकर्षण है। भीम अंड-बंड ढंग से आगे-पीछे, गोला बनाकर,

1. पुष्कर सिंह कंडारी : प्रिंसिपल खेड़ाखाल से प्राप्त

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इधर-उधर बड़ी तीव्र गति से हाथ फैलाता, झुकता हुआ, फुंकारता हुआ नाचता है। दर्शकगण भी भीम बाजा नृत्य के साथ भीम के 'पस्वा' के साथ ही उसी के अनुरूप नृत्य करने लगते हैं। ढोली के ढोल के स्वर—'गिजा गिजड़ी घिन्न-गिता'—के साथ फूट पड़ते हैं।

भीम की रिंगौण के नृत्यगीत का उदाहरण द्रष्टव्य है—

बाला दैंणी होइ जैन तेरी।[1]
दैणी होई जैन जोधा त्यरी बा सौ मण की गदा।
परतिज्ञा का दानी बाला।
सौ मण की गदा वाला तेरी होली नौ मण की ढाल।
वाला जंगलू जंगलू वाला।
भाबरु-भाबरु तुमकू रैं गैने भारत पियांरा।
डाला को गोल हलैकी बाला।
डाला मा बैठ्यां कौरों की पतापत पतग लगैदीने।
चांदी छैला चौक मा बाला।
नौ खारी रीठों को मेरा जोधा पिसम्यल्लो बैण याले।
सौ मण का गोला भीम रे जोधा।
सर्ग चुलैने असी-आसमान अपतां फेंकने हाथी।
पर मेरा बाला। भीमसण जोधा।

—"हे वीर भीम! तेरी सौ मन की गदा और नौ मन की ढाल सदा दाहिनी रहे। हे वीर, तुम जब अपना पराक्रम दिखाते हो तो चारों ओर हाहाकार मच जाता है। पेड़ पर चढ़े कौरवों को तुमने पेड़ हिलाकर ऐसा गिरा दिया है जैसे आम झाड़े गये हों। हे वीर! जब तुम युद्ध का नाच नाचते हो तो तुम्हारे पैरों के नीचे नौखारी (180 द्रोण) रीठे पिसकर खाली बन जाते हैं। हे वीर, दुश्मनों के जिन हाथियों को तुमने आकाश की ओर उठाकर फेंका था, उनका आज तक कोई पता नहीं लगा अर्थात् तेरी मार भयंकर है।

भीम का बाजा नृत्य अंड-बंड शैली में बजता है और नृत्य भी अनियंत्रित होकर शौर्य के प्रभाव में बड़े वेग से चलता है। यह नृत्य गोलाकार स्थिति में अंड-बंड तरीके से होता है, इसीलिए इसे 'भीम की रिंगौण' के नाम से जाना जाता है।

अर्जुन बाजा नृत्य

अर्जुन बीर, श्रृंगार, रौद्र एवं करुण रस के पराक्रमी, वीर योद्धा के रूप में नृत्यों के नायक बनते हैं। अर्जुन का नृत्य तांडव से लास्य कोटि में आने वाला नृत्य है।

---

1. अवोधबंधु बहुगुणा : धुंयाल, पृ० 30

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भयंकर कठिनाइयों में भी अर्जुन अडिग, धैर्यवान्, होते हुए भी उदात्त गुण के हैं। अर्जुन के नृत्य सदा खड़े-खड़े सर-संधान के होते हैं। नृत्य में प्रत्येक कदम अपनी गति से पड़ता है। वार्तानुसार अभिनय संतुलित होता है। अंग-संचालन अर्जुन के नृत्य का विशेष आकर्षण होता है। आंखें, भौं, हाथ एवं शरीर की मुद्राएं विशेष दर्शनीय होती हैं। वार्ता के अनुसार अर्जुन का 'पस्वा' अभिनयात्मक ढंग से आकर्षक नृत्य करता है। दर्शकगण या नृत्य पटु नर्तक अर्जुन के 'पस्वा' के साथ अनेक विचित्रताओं वाला नाच करते हैं। कभी बैठकर, कभी आधा उठकर, कभी पीछे मुड़ कर, कभी तीन कदम आगे और कभी तीन कदम पीछे आकर, धनुष की प्रत्यंचा खींचकर नृत्य किया जाता है, तो कभी प्रिया की आंखों में आंखें डालकर मोहक भावनाओं का अभिनयात्मक नाच नाचा जाता है। अर्जुन स्वयं नृत्यकार थे। नृत्य उनका जीवन था। पंडौं नृत्यों की जान अर्जुन है। वार्ता में अर्जुन विषयक कई प्रसंग आते हैं जिनके अनुसार विविध प्रकार की शैलियों का नृत्य होता है।

ढोली का ढोल—"जैंकता तू जडक जै ना ताक'—आदि शब्द निःसृत कर अर्जुन बाजा नृत्य बजाता है।

अभिमन्यु की मृत्यु का जैसे ही समाचार अर्जुन सुनता है तो उसके क्रोध की सीमा टूट जाती है। वह उसी समय प्रण करता है कि कल सूर्य डूबने से पहले अगर जयद्रथ को न मार सका तो स्वयं चिता में जलकर भस्म हो जाऊंगा। दूसरे दिन घमासान युद्ध हुआ। जयद्रथ डर के मारे छिप गया। कृष्ण ने जब देखा कि जयद्रथ कहीं छिप गया है और दिन समाप्ति पर है तो उन्होंने अपनी माया से बादलों को ओट कर अंधकार कर दिया। अर्जुन जैसे ही चिता पर बैठने के लिए उद्यत हुआ, वैसे ही जयद्रथ खुशी के मारे सामने प्रकट हो गया। कृष्ण ने माया रूपी बादलों को तत्काल हटा दिया। सूर्य सामने दिखाई दिया। अर्जुन ने अपने गांडीव धनुष को चिता से उठाया और जयद्रथ को निशाना बनाकर अपने पुत्र का बदला लिया। यह इस गीत में वर्णित है—

कृष्ण अब पौंछी गैगे हे अर्जुन
देखी तौन तब हे अर्जुन
जैंती मां बिलाप हे अर्जुन
प्रण करी याले हे अर्जुन
जयद्रथ तैं मी मरी ढोललू हे अर्जुन
नितर सूरज डूबण पर भोल हे अर्जुन
चिता मां पोड़लू हे अर्जुन

× ×

जयद्रथ घरमू छिप्यूं च हे अर्जुन
सूर्य अस्त होण लैगे हे अर्जुन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पर जयद्रथ नी मारे हे अर्जुन
अर्जुन चिता मां बैठण लैंगे हे अर्जुन
जयद्रथ तमासो देखण कू प्रकट ह्वैगे हे अर्जुन
कृष्ण न अपणो माया को चक्र हटाये हे अर्जुन
सूर्य सब जगा देखीण लैंगे हे अर्जुन
अर्जुन न तीर मारी याले हे अर्जुन
जयद्रथ को सिर आकाश उड़ेंगे हे अर्जुन
तेरी परतिग्या रै गाया हे अर्जुन

नकुल बाजा नृत्य

सौम्य वातावरण में यह बाजा नृत्य चलता है। 'पस्वा' उठकर आंगिक अभिनय करता हुआ नर्तन करता है। नर्तक सम स्थिति में नाचते हैं। नकुल बाजा नृत्य में ढोली का ढोल—जैंकता तू जड़े—आदि शब्दों का स्वर उच्चरित करता है।

पांडवों के जन्म वाले जागर के साथ वाली नृत्यमयी गाथा में नकुल के गीत लगते हैं और उसका नृत्य होता है।

सहदेव बाजा नृत्य

यह गम्भीर स्थिति और कोमल भावना का द्योतन करने वाला नृत्य है। सहदेव का 'पस्वा' उठकर भावाभिनय करता हुआ नर्तन करता है। नर्तक एवं नृत्य पटु लोग इस नृत्य में भाग लेते हैं।

ढोली—तू जड़क जैंकता जै जात—शब्दों को उच्चरित कर नृत्य को गति देता है। सहदेव के नृत्यगीत, पांडवों की मुख्य गाथा के साथ वार्ता में लगाये जाते हैं।

अभिमन्यु बाजा नृत्य

चक्रव्यूह की कथा महाभारत में प्रसिद्ध है। जयन्ती में चक्रव्यूह-भेदन की शर्त युधिष्ठिर को माननी पड़ी थी। अर्जुन ही चक्रव्यूह के भेदन की कला को जानता था। वह उस समय वहां उपस्थित नहीं था। इसीलिए कौरवों ने यह शर्त रखी थी। अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु ने इस शर्त को स्वीकार करके चक्रव्यूह-भेदन का बीड़ा उठाया था। कौरवों के छल-कपट के कारण उसकी हत्या चक्रव्यूह के भीतर ही की गई थी। गढ़वाल पांडव गाथा में इस कथा को महत्त्वपूण स्थान मिला है।

गढ़वाल में अभिमन्यु को 'बाला घंड्याल' देवता के रूप में पूजा और नचाया जाता है। प्रस्तुत गीत में अभिमन्यु की वीरता का वर्णन हुआ है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तुम रन्दा होला राजा जैन्ती धृगपाल[1]
तुम होला राजा छत्रसाल भौंर
कपटी कौरों न राजा कुचालू रचेली
जौंन रचे राजा सात द्वारा की लड़ाई
जैन्ती राज भांज राजा सणि पत्री देन्दा
जति रन्दा पांडो तुम जैंती राज मांग
तुम आवा पांडो अब सात द्वारों की लड़ाई
जैन्ती मां ह्वे गै झोली झंकार
सीली त ओबरी राजा झीली ह्वे गी खाट
राजा अर्जुन जायूं च दखिण का देस
साथ छ वैंका किरसण सारथी
घर मूं रयो च बालो अभिमन्यू
मी जौंलो पिता रणभूमि-लड़ाई
छैं बिलों की कथा मैंन मां का पेट से सुणयाले
जब माता सुभद्रा तैं लगी छै पेट की वेद
अर्जुन न लगै छई छैं द्वारो की कथा—
चक्रव्यू तोड़न कू जांदो छं वालो घंड्याल
वीरता से इंद रैंने पापी कौरव
चालो करीक तौन मारयाले वालो अभेमन्यु

—"युधिष्ठिर को कौरव जयन्ती (जैन्ती) में बुलाते हैं और चक्रव्यूह-भेदन की शर्त रखते हैं। युद्धों की शर्तों के अनुसार धर्मराज को यह शर्त भी माननी पड़ी, परन्तु उनके पास अर्जुन के सिवाय कोई भी अन्य योद्धा चक्रव्यूह-भेदन की कला को नहीं जानता था। युधिष्ठिर बहुत दुखी होकर सोच में पड़ गये। घर में बालक अभिमन्यु था, जब उसने सारी बातें सुनीं तो वह युधिष्ठिर के पास गया और कहने लगा—पिताजी, मैं चक्रव्यूह-भेदन की कला को जानता हूं। जब मां को प्रसव पीड़ा हुई थी, तभी पिता जी (अर्जुन) ने छह द्वारों के भेदन की कला को सुनाया था। सातवां द्वार मैं स्वयं तोड़ लूंगा। शर्त के अनुसार चक्रव्यूह-भेदन करना आवश्यक था। बालक अभिमन्यु को ही भेजना पड़ा। वह वहां बहादुरी से लड़ा। उसने छह द्वार तोड़ डाले। अंतिम द्वार पर छल से कौरवों ने उसे मार डाला। परन्तु उसके वीरतापूर्ण युद्ध-कौशल से सब दंग रह गये थे।

पांडव नृत्य में जब यह प्रसंग आता है तो वीर और करुण रस का साथ-साथ संचार होता है। यह नृत्य युद्ध-कौशल के अभिनय का अति सुन्दर नृत्य माना

---

1. डा० पुरुषोत्तम डोभाल के संग्रह से प्राप्त

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जाता है।

द्रौपदी बाजा नृत्य

कोमल, करुण, रसपूर्ण, श्रृंगार-भावना से आप्लावित लास्य कोटि का यह बाजा नृत्य है। भावाभिनय एवं आंगिकाभिनय इस नृत्य की विशेषताएं हैं। यह करुणा और श्रृंगार मुद्राओं में चलता है। 'पास्वा' पर द्रौपदी जब आती है, तब वह पांडवों के लिए अपनी आंखें बिछा देती है। अर्जुन के साथ द्रौपदी का नृत्य देखते ही बनता है। वार्तानुसार वासुदत्ता के यहां अर्जुन के जाने पर द्रौपदी विचलित होती है। लौटने पर वासुदत्ता के साथ प्रसन्न रहने पर वह अर्जुन से रार करती है। ये दृश्य जब 'पस्वाओं' के द्वारा नृत्य में नाचे जाते हैं, तो अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति होती है। रवाई में द्रौपदी के नृत्य के साथ चौंसठ कालियां भी हाथों में तलवार लेकर नाचती हैं। द्रौपदी बाल खोलकर ऊपर उछल-उछल कर और किलकारी मार-मारकर नाचती है। कालियां भी ऐसा ही नृत्य करती हैं। रवांई का द्रौपदी का यह नृत्य रौद्र एवं वीर-भाव वाला होता है।

द्रुपद—बोल बोल दुरपदि कै माल बरदी,[1]
तू बोल बोल बेटी कै माल बरदी।
द्रौपदी—मिल जाण बुबा जी वेई माल खुणी,
जू माल वेद मच्छी को आंखो व्याधलो।
द्रुपद—दुरमा गढ़ मां मालूका थावेड़ा,
तू बोल बोल कुंवरी के माल बरदी।
द्रौपदी—छाती का बालू ला जो किवाड़ खोल लो,
जो नौ पोल लिम्बू मोचूं मा थामली।
द्रुपद—बड़ा बड़ा वीर स्वयंवरा मां छन,
बू बोल बोल बाली कै माल बरदी।
द्रौपदी—डांडा जनी हस्ती भुज्जौं मांग राखला,
जैकी गरजणी सूणी की दिग्पाल कांपला।
धर्म व्हालो जैको गद्दी को जग्वल्या,
अर कर्म व्हालो जैको भूमि को रखवल्या।

—"द्रुपद राजा कहता है कि हे बेटी द्रौपदी, बता किस वीर के साथ शादी करेगी। द्रौपदी कहती है कि पिता जी, मैं उसी बहादुर से विवाह करूंगी जो अपने तीर में मछली की आंख को भेदेगा।

बेटी, दुरमागढ़ में वीरों की कतार लग गई है, बता किससे विवाह करेगी?

---

1. केशव अनुरागी : नाद-नंदिनी (अप्रकाशित) से उद्धृत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पिताजी, जो अपने छाती के बालों से दरवाजा खोलेगा और नौ पोल के नीबू को अपनी मोछों पर रोक लेगा, उससे ही मैं शादी करूंगी।

स्वयंवर में बड़े-बड़े वीर आये हैं, बता बेटी, तू किससे विवाह करेगी ?

पिता जी, वन के हाथी को जो वीर अपनी भुजाओं में रख लेगा और जिसकी गर्जना को सुनकर दिग्पाल कांपने लगेंगे, जिसकी गद्दी का जाग करने वाला धर्म होगा और कर्म जिस वीर की भूमि का रक्षक होगा, मैं उसी वीर से विवाह करूंगी।"

द्रौपदी के नृत्य का पंडौं के नाच में विशेष महत्त्व है। द्रौपदी पांडवार्त (पांडव-वार्ता) में आरम्भ से अंत तक रहती है। उसका नृत्य कई रूपों में होता है। 'द्रौपदी का चौंडो' एक ऐसी नृत्य शैली है जिसमें द्रौपदी रण-चंडी बन जाती है। कई जगह जब द्रौपदी का चौंडो का नाम का नाच करवाते हैं तो देवी का दैंत संहार वाला गीत गाते हैं।

गढ़वाल में अथवा हिमालय के प्रत्येक गांव में कार्तिक माह के बाद फसल कटने और गेहूं की बुबाई के बाद पांडव नृत्य किया जाता है। यह नृत्य कम से कम पन्द्रह दिन तक और अधिक से अधिक तीन माह तक होता है। वैसे मार्गशीर्ष तो पांडव नृत्य का महीना है ही।

पांडव नृत्य की विशेषता यह भी है कि गढ़वाल की हर दो पट्टियों के बाद पांडव नृत्यों की शैली बदली हुई मिलती है। यही नहीं, ढोल के बोलों में भी पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। परन्तु पांडव नृत्यों में निम्न चार प्रकार की मुख्य शैलियां सारे गढ़वाल में मिलती हैं—

1. मंडाण—पंडौं का मंडाण
2. सरौं—जब पांडव लड़ते हुए नाचते हैं।
3. वार्ता—पांडवों के विषय में कही जाने वाली गाथा, जिसके आधार पर उनका नृत्य होता है।
4. द्रौपदी का चौंडो—द्रौपदी जब रणचंडी बनकर दुश्मनों का नाश करती है, उस समय का नृत्य।

फिर भी, पांडव नृत्य अनोखे ठाट और पन का लोक-नृत्य है, जिसे टोली बनाकर गोल दायरे में विस्तृत आंगन (मंडाण) में सम्पन्न किया जाता है। नृत्य-पटु पनर्तक (नचाड़) कभी झुककर, कभी बैठकर हाथों में रुमाल या डंडे लेकर मस्ती में नाचते हैं। सुविधानुसार या वार्तानुसार अर्जुन बाजा, द्रौपदी बाजा नृत्य आदि की मांग होने पर उसी तरह नाचते हैं।

नृत्य के मध्य हनुमान का नृत्य भी होता है। ढोली हनुमान के 'पस्वा' को देखते ही जै हणुमान, की ध्वनि के साथ हनुमान का गुणगान करने में लगता है। 'पस्वा' बड़े-बड़े वृक्षों को तोड़कर, बड़े-बड़े पत्थरों को उठाकर मंडाण में ले आते

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हैं। हनुमान का कौतुकपूर्ण अभिनय, बेडौल का नाच आकर्षण के केन्द्र बिंदु बन जाते हैं। भीम और हनुमान का नाच पांडव नृत्य के बीच अद्‌भुत आकर्षण उत्पन्न करता है। हास्य उत्पन्न करने के लिए लड़के या लड़कियां बीच-बीच में सांप या ठठेरे का स्वांग बनाकर आकर्षण पैदा करते हैं।

पांडव नृत्य सामाजिक नृत्य भी बनते जा रहे हैं। बिना पांडव देवताओं के नचाए भी पांडव नृत्य शैलियों का नर्तन किया जाता है और इस तरह हर पर्वतीय इन नृत्यों को अपने में समा चुका है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रंवाई : जहां आज भी पांडवों, कौरवों और कर्ण का राज है

'महाभारत', भारत का महान सांस्कृतिक ग्रंथ है। इस महाकाव्य ने भारत की संस्कृति एवं सभ्यता को विशेष रूप से प्रभावित किया है। तत्कालीन समाज का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि आज भी भारत के कई ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें उस समय की जीवन पद्धति के स्पष्ट दर्शन हो जाते हैं। ऐसे क्षेत्रों में जौनसार बाबर, रंवाई-जौनपुर और हर की दून वाला क्षेत्र प्रमुख है। जौनसार, यह सारा क्षेत्र रंवाई के नाम से भी विख्यात है। इसमें (रंवाई में) जौनसार-बाबर, रंवाई-जौनपुर, पंचगई फतेह पर्वत और बड़ासू (हर की दून) का सम्पूर्ण क्षेत्र आ जाता है। यह क्षेत्र उत्तर प्रदेश के देहरादून जनपद और उत्तर-काशी जनपद के हिमाचल प्रदेश से मिले हुए भाग में स्थित है। जौनसार-बाबर रंवाई-जौनपुर में पांडवों का वर्चस्व है। नेटवाड़ क्षेत्र महारानी 'कर्ण' का है। जबकि 'हर की दून' अंचल में आज भी कौरव नरेश दुर्योधन राज्य कर रहे हैं।

यह बात पढ़ने वालों को अटपटी लग सकती है परन्तु वास्तविकता यही है कि आज भी इस क्षेत्र में पांडवों और कौरवों की जीवन-शैली के दर्शन हो जाते हैं। पांडव इस क्षेत्र में अधिक रहे—शायद यही एक कारण है कि पांडवों का समस्त पर्वतीय क्षेत्र में प्रभाव दिखाई देता है।

गढ़वाल-कुमाऊं से लेकर हिमाचल प्रदेश तक पांडवों को देवता रूप में पूजा तथा नचाया जाता है। इसी तरह हर की दून क्षेत्र के इक्कीस गांवों में कौरव नरेश दुर्योधन को भगवान की तरह पूजा और नचाया जाता है। दुर्योधन के मित्र और महादानी योद्धा कर्ण को भी नैटवाड़ क्षेत्र के दस गांवों में ईश्वरत्व प्राप्त है। उन्हें भी पूजा और नचाया जाता है। यही नहीं महाभारतकालीन सभी नायक-नायिकाओं को इस अंचल में देवता के रूप में पूजा और नचाया जाता है।

समाजशास्त्रियों एवं भारतीय विद्या के विद्वानों के लिए यह अत्यन्त आकर्षण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का विषय है। उन्हें चाहिए कि इस अंचल में जाकर यह देखें कि ऐसे वे कौन से कारण हैं जिनके विशेष महत्त्व से आज भी इन क्षेत्रों के समाज में महाभारत-कालीन जीवन शैली एवं पद्धति के दर्शन हो जाते हैं। यह सर्वथा खोज का विषय है। ऐसे विद्वानों के लिए हम कुछ तथ्य प्रस्तुत करना अपना कर्तव्य समझते हैं।

जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं कि जौनसार-बाबर, रंवाई-जौनपुर, फतेह पर्वत क्षेत्र में पांडवों का प्रभाव है। प्रभाव से हमारा तात्पर्य यह है कि इस क्षेत्र के समाज में आज भी पांडवों की जीवन-शैली के दर्शन हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, इस क्षेत्र में 'द्रौपदी प्रथा' का चलन है। यह भी सच है कि अब इस प्रथा का चलन काफी कम हो गया है, फिर भी इस समाज में पांडवों की इस परम्परा को निभाया जाता रहा है।

विश्व के अनेक ऐसे देश हैं जहां बहुपति प्रथा का चलन है। भारत में कश्मीर से लेकर अरुणाचल प्रदेश तक के पहाड़ी प्रदेश में छुट-पुट रूप से कई जातियों में बहुपति प्रथा निरन्तर चली आ रही है। धुर दक्षिण के केरल प्रदेश की तियान, कोट और कुसुम्ब जातियों में, नीलागिरि की पहाड़ियों में बसने वाले टोडाओं में, मालाबार के 'काम्मल' जातियों में तथा दक्षिण के नायरों आदि अनेक जातियों में बहुपति प्रथा का चलन आज के युग में भी देखा जा सकता है। इन जातियों ने इस प्रथा को अपनी प्राचीन परम्परा से लिया है जबकि जौनसार-बाबर, रंवाई-जौनपुर के लोगों (खसियाओं) ने इस प्रथा को पांडवों से लिया है। पांडवों की प्रिय पत्नी द्रौपदी के उदाहरण को लेकर उन्होंने अपने समाज में इस दर्शन को लिया है। ये लोग अपने को पांडवों का वंशज मानते हैं। जबकि अन्य क्षेत्रों की जन-जातियां पांडवों से अपना कोई सम्वन्ध नहीं बतातीं।

इस क्षेत्र में द्रौपदी विवाह प्रथा एक दर्शन है। मानवशास्त्रियों एवं समाज-शास्त्रियों को इस दर्शन की गहराई तक जाना चाहिए। उनका कहना है कि इस द्रौपदी प्रथा (बहुपति प्रथा) में उनके यहां कभी कोई विधवा होती ही नहीं! 'सदा सुहागन' रहने के लिए इस प्रथा को अपनाया गया है। नई चेतना ने इस अंचल को अवश्य जागृत किया है। इसीलिए ऐसी प्रथा को छोड़ने का प्रयास चल रहा है। कहीं-कहीं यह प्रथा छूट भी गई है। कई क्षेत्रों में बहुपति प्रथा के साथ बहुपत्नी प्रथा के भी दर्शन होने लगे हैं। फिर भी, यह जौनसार-बाबर, रंवाई-जौनपुर वाला इलाका द्रौपदी प्रथा (बहुपति प्रथा) का विशेष क्षेत्र माना जाता है।

इस क्षेत्र में महासू देवता को सर्वोच्च देवता माना जाता है। उनके चारों भाइयों की पूजा सभी गांवों में होती है। महासू का मुख्य स्थान हनोल में है। मन्दिर में नित तीन बार गाजे-बाजों के साथ पूजा होती है। देवदासियां शाम-सुबह नृत्य करती हैं। परन्तु हर पूजा-अर्चना के बाद पांडवों के सम्बन्ध में 'जागड़े' गाये जाते हैं और पांडवों को नचाया जाता है। पांडवों से अलग हटकर यहां कुछ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सोचा ही नहीं जाता।

कुन्ती माता का इन जागड़ों में विशेष महत्त्व है। कुन्ती के बाद अन्य पांडवों के गीत गाये जाते हैं और उन्हें नचाया जाता है। हनोल में भी पंचमी पर्व पर लगातार पांच दिन तक पांडवों को नचाया जाता है। उनके सम्बन्ध में सभी प्रकार की गाथाएं गाई जाती हैं—गाथाओं के अनुरूप ही नृत्य होता रहता है।

कौरव-पांडवों में प्राय: अस्त्र-शस्त्र सम्बन्धी चुनौतियां होती रहती थीं। गुरु द्रोण कौरव-पांडवों की शस्त्र विद्या की निपुणता की परीक्षा लेते रहते थे। उसी परम्परा का निर्वाह यहां प्रतिवर्ष 'विसू' के मेले में देखने को मिलता है। इस मेले में धनुर्विद्या से लेकर मल्लयुद्ध तक के कई चुनौतीपूर्ण खेल खेले जाते हैं। एक गांव के व्यक्ति यदि धनुर्विद्या में जीत गये तो दूसरे गांव वाले दूसरे वर्ष के लिए चुनौती मानकर इस विद्या में अभ्यास कर विजयश्री लेने का प्रयास करते हैं। कौरव-पांडवों के समय की युद्ध कला का यहां प्रतिवर्ष अभ्यास होता रहता है।

मेले हों, खेल हों या त्योहार—हर मौके पर यहां का व्यक्ति पांडव परम्परा को आगे बढ़ाना अपना पुनीत कर्तव्य समझता है।

अतिथि सत्कार इस अंचल की संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग है। पांडवों की इस परम्परा को उनके वंशजों ने आज तक पूर्णत: निभाया है। घर में जब कोई अतिथि आ जाता है तो घर की बड़ी बहू उसके हाथ धुलाकर भोजन करवाती है। पहले घर की बेटी अतिथि के पैर धोती थी और रात में उसके पैरों की मालिश करती थी। अतिथि की थकावट को दूर करने का यह परम्परागत सत्कार था। परन्तु बाहरी व्यक्तियों ने इस सेवा का गलत अर्थ लगाया और घर की बेटी के साथ अभद्र व्यवहार करने की चेष्टा की। परिणामस्वरूप अब बाहरी व्यक्तियों को यह सम्मान मिलना बन्द हो गया है। परन्तु स्थानीय अतिथियों को यह सत्कार आज भी मिल रहा है। लाखामंडल क्षेत्र के थौटाड़, भटाड़, लाउड़ी और मौटी गांवों में अतिथि सत्कार की पुरानी परम्परा आज भी उसी रूप में मिलती है।

पांडवों के जीवन से सम्बन्धित कई ऐसे पक्ष हैं जिनका इस क्षेत्र में आज भी पालन होता है। यदि इन क्षेत्रों में जाकर देखा जाय तो कई ऐसे स्थान मिलेंगे जिनका पांडवों से सीधा सम्बन्ध रहा है। 'लाखामंडल' और 'विराटगढ़ी' का तो ऐतिहासिक एवं पौराणिक महत्त्व सर्वत्र मान्य हो चुका है। परन्तु महाभारत-कालीन कुछ ऐसे चरित्र नायक हैं, उनके विषय में विस्तार से जानकारी का होना आवश्यक है।

कौरव-पांडवों के युद्ध के समय बहुत-सी जातियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उन जातियों के विषय में जानकारी, इन्हीं क्षेत्रों के गीतों एवं स्थानों में ढूंढ़ी जा सकती है।

कौरव नरेश दुर्योधन का क्षेत्र कर्ण के क्षेत्र (नैटवाड़) से आगे है। वहां उन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सभी चरित्र नायकों को पूजा और नचाया जाता है जिन्होंने दुर्योधन का साथ दिया था। कर्ण के क्षेत्र में कर्ण के अलावा 'शल्य' को और 'किरमिर राक्षस' को देवता रूप में पूजा तथा नचाया जाता है।

रंवाई के क्षेत्र में 'सेलकुड़िया', 'कौंल केदारी', 'नन्दासर', 'रेणुका', 'पोखू', 'मैन्दरथ', 'स्यूड़या' आदि अनेक देवता हैं जिनको देवताओं की तरह पूजा जाता है। इनमें कुछ देवता पांडा क्षेत्र में पूजे जाते हैं तो कुछ कौरव नरेश दुर्योधन के क्षेत्र में नचाये जाते हैं। इनके विषय में भी जानकारी होनी चाहिए कि महाभारत-काल में इनकी क्या भूमिका थी? ऐसे बहुत-से प्रश्न हैं जिनका उत्तर विस्तृत रंवाई अंचल में खोजा जा सकता है। यही एक (शायद) ऐसा क्षेत्र है जहां एक साथ कौरव-पांडवों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। हमारा विश्वास है कि इस क्षेत्र में महाभारतकालीन समाज के कई तथ्य प्रकाश में आ सकेंगे। क्योंकि दोनों विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व इस छोटे से अंचल में होता है। आपसी रंजिश आज भी मौजूद है। यह अवश्य है कि समय के प्रहार ने कुछ परिवर्तन किया है परन्तु मूल सोच में कोई अन्तर नहीं आया है। आज भी इन क्षेत्रों में पौराणिक जीवन की स्पष्ट छाप लगी हुई मिलती है। अन्तर स्पष्ट दीखता है परन्तु उनकी वास्तविकता तभी सही अर्थों में विद्वानों के सामने प्रकट होगी, जब उनके जीवन का गहरा अध्ययन किया जायेगा।

'जौनसारी' लोग वे हैं जो पांडवों के वंशज हैं। हमने इस शीर्षक से उनके विषय में थोड़ी जानकारी देनी आवश्यक समझी है ताकि विद्वानों को इस क्षेत्र के निवासियों के रहन-सहन आदि का ज्ञान हो सके।

कर्ण के सम्बन्ध में भी कुछ जानकारी देना आवश्यक समझा है। क्योंकि महाभारतकालीन समाज का अध्ययन बिना कर्ण के हो ही नहीं सकता। इस अंचल के लोक ने उन्हें किस रूप में स्वीकारा है—यह अत्यन्त आकर्षक है।

दुर्योधन का अपने इक्कीस गांवों का भ्रमण आज भी चल रहा है। महाभारत-कालीन समाज की व्याख्या बिना दुर्योधन के सम्भव नहीं है। 'हर की दून' अंचल में उनके विषय में ऐसी जानकारी का मिलना—समाजशास्त्रियों के आकर्षण का विषय होगा।

पांडवों के वंशज : जौनसारी

जौनसार-बावर क्षेत्र, देहरादून जिले में स्थित चकराता तहसील के चकराता और कालसी ब्लाक में पड़ता है। भौगोलिक दृष्टिकोण से यद्यपि जौनसार व बावर दो पृथक् क्षेत्र हैं, किन्तु दोनों ही क्षेत्रों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक समानताओं के कारण इन्हें एक ही इकाई मान लिया गया है। यह क्षेत्र अपनी विचित्र प्रथाओं, बहुरंगी परिधानों व रहन-सहन के लिए प्रसिद्ध है। जौनसारी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समाज जादू-टोना, मन्त्र-तन्त्र, झाड़-फूंक तथा अन्धविश्वासों से घिरा हुआ समाज है। यही वह क्षेत्र है जहां बहुपति प्रथा भी प्रचलित है। अपनी इस प्रथा के कारण यह क्षेत्र सदा से ही चर्चा व उत्सुकता का विषय बना हुआ है।

जौनसारी जनजाति के लोग स्वयं को पांडवों का वंशज मानते हैं। यह पांचों पांडवों को अपना प्रमुख देवता तथा उनकी माता कुन्ती को देवी मानकर पूजा करते हैं। सामाजिक स्तर पर जौनसारियों को हम तीन भागों में बांट सकते हैं। पहले खस, जिसके अन्तर्गत राजपूत एवं ब्राह्मण आते हैं, दूसरे कारीगर वर्ग के लोग जिसमें लोहार, सुनार, बढ़ई, बाजगी आदि सम्मिलित हैं तथा तीसरे स्तर पर अछूत जैसे डोम, कोल्टा, कोली और मोची आदि आते हैं। सामाजिक स्तर पर कोल्टा लोग सबसे नीचे आते हैं। कारीगर और अछूत वर्ग के अधिकांश लोग गरीब होते हैं और इनको हमेशा रुपये-पैसे की आवश्यकता बनी रहती है। ऐसी स्थिति में ये लोग खस लोगों से आर्थिक सहायता लेते हैं, जिसके दुष्परिणामस्वरूप ये सदैव कर्ज के बोझ तले दबे रहते हैं। उन्हीं के निर्देशानुसार कार्य करते रहते हैं। वास्तव में परम्परागत रूप में वे भूमिहीन श्रमिक हैं, जो सवर्णों के यहां बंधुआ श्रमिकों के समान कार्य करते हैं।

जौनसारी लोग अपना घर लकड़ी से बनाते हैं। यदि मकान 2-3 मंजिला हो तो अक्सर मकान का निचला भाग पत्थर से निर्मित होता है किन्तु ऊपरी हिस्सा लकड़ी का ही बना होता है। घर का मुख्य द्वार भी लकड़ी से ही बनाया जाता है, जिसके ऊपर ये लोग अनेक प्रकार के अलंकरण करते हैं।

जौनसारियों का मुख्य पेय शराब है जिसको ये लोग अनेक प्रकार के अनाजों से घर पर स्वयं ही निर्मित करते हैं।

जौनसार-बाबर की आर्थिक व्यवस्था में कृषि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहां महिलायें घर की चहारदीवारी में बन्द नहीं रहती हैं। बल्कि सभी प्रकार के श्रम कार्यों में पुरुषों को सहयोग देती हैं। कृषि कार्य में तो स्त्रियां पुरुषों से अधिक कार्य करती हैं। पुरुष केवल हल चलाते हैं। बाकी सभी कार्य महिलाओं द्वारा ही किये जाते हैं। इस दृष्टिकोण से जौनसारी समाज में स्त्रियों की आर्थिक उपयोगिता बहुत अधिक है। यहां लड़कियों का जन्म शुभ माना जाता है, किन्तु श्रम कार्यों में अत्यधिक सहयोग करने के कारण जौनसारी लड़कियां प्रायः औपचारिक शिक्षा से पूरी तरह वंचित रह जाती हैं। कृषि कार्यों के अतिरिक्त यहां के बढ़ई, लोहार, सुनार, बाजगी आदि अपने परम्परागत व्यवसायों से भी अपना जीविकोपार्जन करते हैं।

अपनी बहुपति प्रथा अथवा द्रौपदी के विवाह के कारण जौनसारी समाज अत्यन्त चर्चित है। स्वयं को पांडव वंशीय मानने वाले जौनसारी आज भी इस प्रथा को अपनाए हुए हैं; जिसके अनुसार इस समाज में केवल बड़ा भाई ही विवाह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करता है और उसकी पत्नी सभी भाइयों की पत्नी मानी जाती है। यदि सब भाइयों की आयु में अधिक अन्तर है तो दूसरी पत्नियां भी लाई जा सकती हैं किन्तु इस स्थिति में विवाह बड़े भाई का ही होता है। परिवार में आने वाली दूसरी पत्नी पर भी सभी भाइयों का समान अधिकार है। कहीं-कहीं अपवाद रूप में यह भी देखने में आता है कि जितने भाई होते हैं, उतनी स्त्रियां भी होती हैं और प्रत्येक का अपनी पत्नी पर पृथक् अधिकार होता है। कहीं-कहीं पर यौन-सम्बन्धों को भी सीमित कर दिया जाता है। जैसे छोटे भाई का सम्बन्ध तो बड़े भाई की पत्नी से हो सकता है, किन्तु बड़े भाई का छोटे भाई की पत्नी से कोई यौन-सम्बन्ध नहीं रहता।

धीरे-धीरे अब एक ही विवाह पर जोर दिया जा रहा है। उनके समाज में आज भी द्रौपदी विवाह की ही प्रधानता है, किन्तु नयी शिक्षा के प्रसार से यह प्रथा लगभग समाप्तप्राय होने की दिशा में अग्रसर है। महिला तथा पुरुष दोनों को ही विवाह-विच्छेद की अनुमति होती है। यदि कोई महिला अपने पति को तलाक देकर दूसरे के साथ रहना चाहती है तो उसे कुछ धन मुआवजे के रूप में अपने पति को देना पड़ता है। रह रकम उसको अपने भावी पति से प्राप्त होती है। तलाकशुदा स्त्री का समाज में बहुत मूल्य आंका जाता है।

दहेज-प्रथा जौनसारियों में नहीं है। विवाह में वधू को जो भी धन दिया जाता है, वह दहेज के रूप में न होकर लड़की को सम्मान प्रदान करने के उद्देश्य से दिया जाता है। विवाह में पिता के घर से प्राप्त दहेज व धन पर उसी का स्वामित्व रहता है। शादी में मिलने वाले उपहार व सम्पत्ति की भी वही स्वामिनी होती है। उसके साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं किया जाता है।

जौनसारी समाज में स्त्रियों की स्थिति दोहरे मापदण्ड द्वारा निर्धारित होती है। उन्हें र्‌यांटी और द्‌यांटी की दोहरी भूमिका से गुजरना पड़ता है। द्‌यांटी का अर्थ है 'बेटी' अर्थात् परिवार में रहने वाली बेटी, पोती, बहन आदि द्‌योंटी कहलाती हैं। र्‌यांटी का तात्पर्य पत्नी से है। द्‌यांटी के रूप में लड़की अपने घर में रहते हुए सभी कार्यों में छोटे भाई-बहनों की देखभाल करने में वह अपने माता-पिता का साथ देती है। उसे सभी प्रकार के अधिकार प्राप्त होते हैं। पिता के घर में रहते हुए वह अपनी आयु के लड़कों के साथ घूम-फिर सकती है। हंसी-मजाक कर सकती है। कभी-कभी ये सम्बन्ध यौन-सीमाओं को भी पार कर जाते हैं। विवाहोपरांत भी जब वह अपने पति के घर से माता-पिता के घर आती है तो भी वह पूर्ववत् यौन सम्बन्ध तक भी स्थापित कर सकती है।

यदि किसी कारणवश उसका पति से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाये तो पिता के घर में उसे पहले की भांति सारे अधिकार फिर से प्राप्त हो जाते हैं।

र्‌यांटी की स्थिति ठीक इसके विपरीत है। पति के घर में उसे कठोर अनु-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शासन में रहना पड़ता है। प्रातःकाल से लेकर रात तक वह कठोर परिश्रम करती है। परिवार में जो सबसे बड़ी र्‌यांटी होती है, वह परिवार का निर्देशन करती है। यदि वह इस कार्य को करने में सक्षम न हो या अधिक आयु वाली हो तो यही कार्य क्रमानुसार उससे छोटी र्‌यांटी को करना पड़ता है। र्‌यांटी के रूप में स्त्री का जीवन बड़ा कठोर है। कोई भी स्त्री गांव में सामूहिक कार्यक्रमों में भाग नहीं ले सकती। पति के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष के समक्ष स्वच्छंद नहीं हो सकती। उनसे पति के प्रति पूर्ण निष्ठा की आशा की जाती है। पारिवारिक निर्णयों में भी उनकी कोई भूमिका नहीं रहती। समस्त निर्णय परिवार का मुखिया ही करता है। समाज में होने वाली सभाओं और पंचायतों में वे सदा पुरुषों से नीचे स्थान पर ही बैठती हैं।

इस प्रकार जहां एक ओर द्‌यांटी के रूप में लड़की को अनेक प्रकार के विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं, वहीं र्‌यांटी के रूप में आते ही उसे कठोर अनुशासन व परिश्रम का जीवन बिताना पड़ता है। उसकी सारी स्वच्छंदता छिन जाती है और उसका जीवन अत्यन्त नियंत्रित हो जाता है।

जौनसार-बावर के समाज की एक उल्लेखनीय विशेषता यह भी है कि ये लोग भाग्य, जादू-टोना, गण्डे-ताबीज, जन्म-पत्री, जन्तर-मन्तर, भूत-प्रेत आदि पर बहुत अधिक विश्वास रखते हैं। उनके अनुसार सभी बीमारियों और कष्टों का कारण भूत-प्रेत, राक्षस एवं धार्मिक नियमों का उल्लंघन, देवी-देवता का प्रकोप, नजर लगना आदि होते हैं तथा यह मनुष्य के पापों व अपराधों का प्रतिफल है। देवी-देवताओं एवं भूत-प्रेतों का प्रकोप ही मनुष्य को बीमार व कमजोर कर देता है। अतः इनका इलाज प्रार्थना तथा प्रण द्वारा, झाड़-फूंक द्वारा, जादू-टोने द्वारा, ताबीज पहनकर तथा बलि के द्वारा ही सम्भव होता है। इनके रीति-रिवाजों में भी अंधविश्वास भरा हुआ है। देवी-देवता के प्रकोप से बचने के लिए ये लोग वे सभी उपाय करते हैं जिससे देवी-देवता प्रसन्न रहें, जैसे छोटी माता के निकलने पर भोजन को घी-तेल से न छौंकना आदि। बच्चों को यदि कोई टोक दे कि यह बच्चा कितना सुंदर है तो उसके नजर लग जाती है और वह बीमार हो जाता है। ऐसे अवसर पर ये लोग पंडितों द्वारा दिए गए चावल रोगी को खिलाते हैं। मंत्र से फूंकी हुई चूल्हे की राख घर में रखते हैं अथवा बच्चों को ताबीज पहनाते हैं तथा मंत्र पढ़े हुए सरसों के दाने बच्चों के गले में पहना देते हैं।

भूत-प्रेत भी अनेक प्रकार के रोगों के कारण होते हैं। इनका विश्वास है कि जो व्यक्ति प्राकृतिक मौत नहीं मरता, वह भूत बन जाता है तथा उसी गांव में रहता है और जो भी व्यक्ति रात्रि में या एकांत में उधर निकलता है, उसके ऊपर भूत-प्रेत का प्रभाव हो जाता है। अतः भूत-प्रेत के प्रकोप से मनुष्य कमजोर होता जाता है। उसका रंग पीला पड़ जाता है। वह कभी अत्यधिक [illegible] लगता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है, तो कभी बहुत अधिक हंसता दिखाई देता है। व्यक्ति भोजन अधिक करने लगता है। उसके चेहरे की भाव-भंगिमा बदली हुई-सी लगती है। आंखें बड़ी-बड़ी दिखाई देती हैं। इसके उपचार में वे पंडितों द्वारा मंत्र फूंककर पढ़े हुए चावल रोगी को देते हैं। अक्सर ये लोग उपचार के रूप में बलि भी चढ़ाते हैं। अनेक प्रकार से झाड़-फूंक करवाते हैं, जिससे भूत-प्रेत उस रोगी का पीछा छोड़ देते हैं।

अत: भूत-प्रेत से बचाव के लिए ये लोग रात्रि से पहले ही घर वापस आने का प्रयत्न करते हैं और रात्रि में बाहर जाना अथवा जंगल की ओर से गुजरना मना करते हैं। चिकित्सा-सुविधा प्राप्त होने पर भी उसका लाभ उठाने के बजाय वे अपने पारम्परिक झाड़-फूंक, जादू-टोना आदि के द्वारा ही उपचार करना ज्यादा बेहतर समझते हैं।

जौनसारी समुदाय में पांचों पांडवों व कुंती की पूजा बड़ी श्रद्धा से की जाती है। ये लोग हिन्दू धर्म को भी मानते हैं, किन्तु इनके स्थानीय देवताओं का महत्त्व इनके लिए ज्यादा है। ये लोग 'महासू' नामक देवता की पूजा करते हैं। इनका प्रमुख तीर्थ 'हनोल' है। वहीं पर 'महासू' देवता का प्रमुख मंदिर भी है। इनके अपने गृह-देवता भी होते हैं। अपनी पूजा में ये लोग चिड़ियों और जानवरों की बलि चढ़ाते हैं। बड़ी-बड़ी मृत चिड़ियों को अपने घर के आगे टांगना ये शुभ मानते हैं। विस्यू, पांचोई, दीपावली, बैशाखी व माघ का मेला इनके प्रमुख पर्व हैं। माघ पर्व पर बलि चढ़ाने के लिए यह लोग साल-भर भेड़ों को पालकर हृष्ट-पुष्ट बनाते हैं। माघ के उत्सव में ये लोग स्वच्छन्द रूप से नाचते-गाते व हर्षोल्लास मनाते हैं। अधिकांश मकानों की भांति मन्दिरों का निर्माण भी ये लोग पत्थर एवं लकड़ी के द्वारा ही करते हैं। मंदिर के द्वार पर ये नागों की आकृति बनाते हैं। देव मन्दिर में भाले या बरछी में ध्वज लगाकर टांगते हैं। मंदिरों में अपनी बनाई गई लकड़ी की चिड़िया, शेर, बाघ, घोड़ा व मानव-आकृतियां चढ़ाते हैं। धातु से बने कलश व मूर्तियां भी ये देवताओं के मंदिर में अर्पित करते हैं।

जौनसारियों की लोककला के दर्शन, इनके घर व मंदिर में बने हुए अलंकरणों में होते हैं। घर की बाहरी दीवार पर ये लोग, पशु, पक्षी, मानवाकृतियां, पक्षी का शिकार करते हुए शिकारी, हुक्का पीता हुआ आदमी आदि के चित्र बड़े सुंदर ढंग से बनाते हैं। जौनसार में प्रत्येक घर में आज भी लोक-कला जीवित है। यहां तक कि धान से चावल निकालने वाली ओखली पर भी लोक-जीवन से संबंधित चित्र निर्मित होते हैं। रंग-बिरंगे परिधान, जानवरों की खाल के झोले, टोपी आदि बनाना इनकी कलाप्रियता को प्रकट करते हैं।

जौनसारियों के नृत्य व गीत इनके पर्वों व मेलों में विशेष रूप से देखने को मिलते हैं। प्रतिदिन सायंकाल से लेकर रात्रि तक ये लोग नाचते, गाते व उल्लास

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मनाते हैं। 'जागड़ा' महासू देवता की उत्पत्ति के उपलक्ष्य में मनाया जाता है। जनवरी-फरवरी में जौनसारियों के घरों में नित्य पूजा और नर्तन होता है। इन अवसरों पर इन लोगों में जाति-पांति का कोई भेद नहीं रहता। सभी लोकनृत्य सभी जातियों के लोग साथ-साथ करते हैं। डा० डी० एन० मजूमदार ने लिखा है—"खस मैदानी व गढ़वालियों की तरह जाति-प्रथा पर विश्वास नहीं करते। उनके आपस में विवाह हो जाते हैं। खेतों में काम करते समय कोई जाति-बन्धन नहीं होता। जौनसारी सब एक जैसे विश्वास रखते हैं, एक ही जैसे धर्म का अनुपालन करते हैं।" ठुमकिया, बराड़ी, गुण्डियारास, आड़े-बाड़े, रासो, घुमसू, जंगबाजी, पौवई, मण्डावाला, झेला आदि इनके प्रमुख नृत्यगीत हैं। वाद्यों में जौनसारी प्रायः सभी वाद्यों का प्रयोग करते हैं। परन्तु इनके मुख्य वाद्य ढोल, रोटी, जिव्या, शंख, डंडी, सिणई, बीन, बंसरी, हुड़की, ढफली, मृदंग, रणसिंहा, भेरी, तुर्री, नगाड़ा आदि हैं। पूजा के अवसर पर ये सभी वाद्यों का प्रयोग करते हैं। दूर मंदिरों में पूजा करके ये लोग बाजे-गाजे के साथ जाते हैं व उल्लासपूर्वक पूजा करते हैं।

जौनसारियों के समाज में बाजगीरों का सबसे अधिक महत्त्व है। बिना इनके जौनसारियों का कोई भी कार्य शुभ नहीं माना जाता। प्रातःकाल नौबती बजा कर विश्राम करते हैं। जौनसारी समाज में छुआछूत को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, महिलाओं का इस समाज में विशेष आदर होता है। यह बात पूर्णतया सत्य है कि यदि कोई महिला किसी के घर किसी काम के लिए या कुछ मांगने के लिए चली जाती है तो उसे खाली हाथ नहीं लौटाया जाता। यदि किसी महिला की मृत्यु हो जाती है तो उसका दाह संस्कार तब तक नहीं किया जाता, जब तक उसके मायके वाले नहीं पहुंच जाते। यों तो देखने में घर के प्रमुख व्यक्ति का ही नेतृत्व होता है, किन्तु घर का संचालन वास्तविक रूप से प्रमुख महिला के ही हाथ में रहता है।

आज के भौतिकतावादी लोग इस अंचल में जाकर अनैतिकता फैलाने का प्रयास करते हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि इस अंचल में एक विशिष्ट प्रकार की जीवन-शैली है जिसमें यौन-मूल्यों के लिए समाज ने अपने नियम निर्धारित कर लिए हैं। यहां इन मूल्यों पर पूरी तरह नियन्त्रण रहता है। जहां तक पारस्परिक प्रेम-संबंधों का प्रश्न है ऐसे सम्बन्ध तो प्रत्येक समाज में घनिष्ठता हो जाने के बाद स्वतः बन ही जाते हैं।

फिर भी समाजशास्त्रियो के लिए जौनसार-बाबर का क्षेत्र आज भी अत्यन्त खोज का विषय बना हुआ है। सम्पूर्ण भारतवर्ष के समाजशास्त्री इस अंचल में विभिन्न प्रकार की जानकारियां प्राप्त करने के लिए घूमते फिरते नजर आते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यहां के रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन, भाषा-बोली और भिन्न प्रकार की मान्यताओं के कारण देश के लोगों का इस अंचल के प्रति जिज्ञासा रखना आवश्यक प्रतीत होता है। इसीलिए इस अंचल में रहकर विभिन्न प्रकार के अनुसंधान कार्य किये जा रहे हैं।

जौनसार-बाबर में गरीबी है। सरकार की ओर से इस जनजातीय क्षेत्र के विकास के लिए अनेक योजनाएं बनाई गई हैं। कोल्टाओं को उनके ठाकुरों के चंगुल से छुड़ाने के लिए सरकार ने कई योजनाएं बनाई हैं जिसके अंतर्गत आजीवन बन्धक रहने की प्रथा का अंत किया गया है।

जौनसार-बाबर नित्य नई बातों को सीख रहा है। नये समाज की ओर बढ़ रहा है। उनके जीवन में बाहरी संस्कारों का प्रवेश अत्यन्त द्रुतगति से हो रहा है। अब ऐसा समय दूर नहीं है जब जौनसार-बाबर क्षेत्र नयी संस्कृति में ढलकर सम्पूर्ण देश का नेतृत्व करेगा।

आराकोट

इसी तरह आराकोट बंगाण भी पांडव संस्कृति से प्रभावित क्षेत्र है। यह क्षेत्र उत्तरकाशी जनपद के पुरोला तहसील और मोरी विकास खंड की सीमाओं पर स्थित है। यह क्षेत्र हिमाचल और देहरादून की सीमाओं का क्षेत्र है। इस क्षेत्र में हिमाचल का अधिक प्रभाव है। खान-पान, रहन-सहन, बोल-चाल और रीति-रिवाज की दृष्टि से भी यह क्षेत्र हिमाचल के अधिक नजदीक है। सभ्यता यहां अन्य क्षेत्रों से अधिक है।

यह अंचल महाभारतकालीन 'वरणावत' है। महाभारतकालीन संस्कृति एवं सभ्यता का यहां पर्याप्त प्रभाव है। नई विचारधारा ने अवश्य यहां परिवर्तन किया है। 'बहुपति प्रथा' एवं 'बहुपत्नी प्रथा' इस अंचल में काफी कम हो चुकी है। कहीं-कहीं इसके उदाहरण मिल जाते हैं।

जौनसार-बाबर की तरह आराकोट बंगाण में भी महासू देवता की मान्यता है। महासू के मंदिरों में देवदासियों का नृत्य होता है। यहां का 'हटकोटी देवी' का मंदिर बहुत प्रसिद्ध है। आतिथ्य सत्कार में यह क्षेत्र सबसे आगे माना जाता है। यहां की नवयुवतियां, अतिथि से बात करने में कोई संकोच नहीं करती हैं। जौनसार-बाबर की तरह कई गांवों में बहुएं, अतिथि के पैरों को सोते समय या सोने से पहले धोती हैं। अतिथि को स्वच्छ बिस्तर सोने के लिए दिया जाता है। यहां के लोग अतिशिष्ट हैं। नमस्कार करना नहीं भूलते और हर बात के साथ 'जी' का प्रयोग करते हैं। महाभारतकालीन सभ्यता का इन पर अधिक प्रभाव दीखता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बड़कोट-पुरोला

उत्तरकाशी जनपद के हिमाचल से लगे नौगांव, पुरोला और मोरी तीन विकास खंड हैं—जिन्हें रंवाई क्षेत्र में गिना जाता है। यहां के निवासियों को 'रंवाल्टा' कहा जाता है। यह क्षेत्र भी पांडव संस्कृति के पुजारी हैं। जौनसार-बाबर की तरह यहां का जीवन भी है। पांडवों की पूजा करना इनका मुख्य धार्मिक कृत्य है। यहां के पांडव नृत्य सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। इसके अलावा यहां का नाग नृत्य, ओंरंगा राश और पटकनी नाच प्रसिद्ध है।

पांडवों से सम्बन्धित युद्ध-कौशल के भी नृत्य यहां प्रसिद्धि पा चुके हैं। यहां बहुपति प्रथा सर्वत्र है। कुंती का विशेष मान है। अतिथि सत्कार करने में यहां के लोगों का विशेष नाम है। बाहर के व्यक्ति का घर के सामने हाथ-पैर धुलाने का रिवाज है।

पांडवों का श्राद्ध

जौनसार-बाबर से लेकर रंवाई-जौनपुर में पांडव भक्ति अधिक है। प्रतिवर्ष पांडवों का श्राद्ध किया जाता है। परन्तु रंवाई क्षेत्र में पांडवों के श्राद्ध को करने का विशेष आयोजन होता है। पांडवों का श्राद्ध करना प्रत्येक परिवार अपना पुनीत धार्मिक कर्तव्य समझता है। प्रत्येक गांव में पांडवों के मन्दिर बने होते हैं।

गडोली

गडोली क्षेत्र राजगढ़ी का इलाका है। यहां भी पांडव संस्कृति का बाहुल्य है। प्रत्येक गांव में पांडवों के मन्दिर मिलते हैं। यहां भी पांडवों के श्राद्ध करने का बहुत रिवाज है।

रंवाई क्षेत्र में बहुपति और बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन है। यहां भी यह रिवाज सर्वत्र मिलता है। यहां एक परिवार से जब महिला दूसरे परिवार में चली जाती है तो उसका मूल्य बढ़ जाता है। बहुपति अर्थात् द्रौपदी प्रथा का अधिक चलन है। वैसे बहुपत्नी वाले भी कई परिवार हैं। राजगढ़ी का सारा अंचल आतिथ्य सत्कार के लिए प्रसिद्ध है।

दोणी एवं हडियार क्षेत्र

रुपिन नदी के दोनों ओर बसे हुए गांवों का केंद्र 'दोणी' है। इस घाटी में भितरी, बरी, हटवाड़ी, सेवा, खन्ना, मसूरी, सट्टा, खन्यासणी, पुजेली और दोणी सहित 10 गांव हैं। यहां पांडव संस्कृति का बोलबाला है। 'सेवा' गांव हिमाचल से मिला हुआ है। यहां भी बहुपति प्रथा का चलन है। अतिथि सत्कार है, परन्तु

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस इलाके में विष (जहर) देने का भी अनोखा रिवाज है। इसलिए इस क्षेत्र में एक प्रकार का भयावह वातावरण सदैव बना रहता है।

जौनपुर

टिहरी-गढ़वाल का एक ब्लाक है। मसूरी के पीछे नैनबाग, डामटा वाले क्षेत्र में इस ब्लाक का विस्तार है। जौनसार-बाबर की तरह यहां भी पांडवों की पूजा होती है। द्रौपदी प्रथा का अधिक प्रचलन है। समय के साथ यह अंचल भी नई चेतना के साथ आगे बढ़ रहा है। अतिथि सत्कार यहां अपेक्षा से कम होता है। प्रत्येक गांव में पांडवों के मन्दिर हैं।

इन सभी क्षेत्रों में पांडवों की विशेष पूजा होती है। उन्हें देवता रूप में नचाया जाता है। उनके मन्दिर जगह-जगह पर स्थापित किए जाते हैं। पांडवों का श्राद्ध विशेष रूप से सम्पन्न किया जाता है जिसमें हिन्दू धर्म के अनुसार कर्मकांड का विशेष प्रयोग किया जाता है। मोरी से नैटवाड़ और कुछ आगे के क्षेत्र तक एक ऐसा अंचल है जिसमें प्राकृतिक सुंदरता अधिक है। इस क्षेत्र के गांवों में महाभारतकालीन संस्कृति के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते हैं। इन गांवों में पांडव संस्कृति और कौरव क्षेत्र के गांवों की संस्कृति को मिले-जुले रूप में देखा जा सकता है। इन गांवों में द्रौपदी प्रथा भी मिलती है। एक पत्नी वाले परिवार भी मिलते हैं। अनेक घरों में जाने वाली औरतों की संख्या भी कम नहीं है। गांवों में कर्ण के मन्द मन्दिर हैं। कर्ण को ही इस क्षेत्र में भगवान के रूप में मान्यता मिलती है।

कर्ण का क्षेत्र : नैटवाड़ अंचल

'कर्ण' का अपना क्षेत्र 'नैटवाड़' वाला भूभाग है। मोरी विकास खंड में ही यह क्षेत्र पड़ता है। दणगाण, सुचाण, हलटाड़ी, गैंचाण, पोखरी, पैसर, पासा, कुनारा, लुछाला और देवरा—मात्र 10 गांव 'कर्ण' महाराज के हैं। इन गांवों में कर्ण को मुख्य देवता के रूप में पूजा जाता है। कर्ण का मुख्य मन्दिर देवरा गांव में है। नैटवाड़ नगर से चढ़ाई के रास्ते पर चढ़ने के बाद गैंच्वाण गांव होकर 'देवरा गांव' पहुंचा जा सकता है। यह दूरी मात्र डेढ़ किलोमीटर से दो किलोमीटर के बीच है। कर्ण के मन्दिर के आगे 'नंदी' विराजमान है। लकड़ी का यह मन्दिर बहुत सुंदर है। आंगन में कटे हुए पत्थरों का सुंदर चौक है। मन्दिर में मुख्य मूर्ति कर्ण की है। परन्तु मन्दिर में शिवलिंग, कार्तिक स्वामी, गणेश और गिरिजा की भी मूर्तियां हैं। कर्ण की मूर्ति के साथ 'सल्य' (शल्य) की मूर्ति भी एक ही सिंहासन पर स्थापित है। चतुर्भुजी दुर्गा के साथ 'रेणुका' की मूर्ति भी इस मन्दिर में है।

कर्ण की पूजा बड़े विधि-विधान से की जाती है। प्रतिदिन 3-4 बजे दोपहर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के बाद पूजा होती है। पुजारी जब पूजा करता है तो बाजगीर बाजा बजाते हैं। उस समय कोई पशु बंधा हुआ नहीं होना चाहिए। पुजारी पूजा के बाद ही भोजन करता है। मुख्य पूजा सांध्यकाल की आरती को माना जाता है। आरती के समय प्रतिदिन ढोल-दमामा, रणसिंहा और घंटा बजाया जाता है।

कर्ण से पहले 'शल्य' को पूजा जाता है। देवरा गांव से पहले शल्य का स्थान नैटवाड़ था। आज भी पोखू और शल्य का रुपिन-सूपिन नदियों के संगम पर नैंट-वाड़ गांव में एक ही मंदिर है। इस मंदिर के आगे भी नंदी को स्थापित किया गया है। स्थानीय लोगों का कहना है कि यह शिव मंदिर है, परन्तु मंदिर में पोखू और शल्य की मूर्तियां ही नजर आती हैं। इस मंदिर में पुजारी मुख्य मंदिर की ओर पीठ कर पूजा करता है। कहते हैं, मुख्य देवताओं की मूर्तियों को भूमि में गाड़ा हुआ है—उन्हें दर्शक देख नहीं सकते।

कर्ण की पूजा भाद्रपद के महीने में नागचौथ को रात्रि पर जागरण करके की जाती है। मंदिर में दीपक जलाकर और आंगन में नाचकर कर्ण की पूजा करने का विधान है। पंचमी को भी देवरा गांव के मंदिर में ही पूजन और नर्तन होता है। छठी की रात को रुपिन और सूपिन के संगम वाले—पोखू के मंदिर में पोखू और शल्य देवताओं के लिए विशेष जागरण होता है।

मकर संक्रांति के दिन भी कर्ण को पूजा तथा नचाया जाता है। उस दिन रात्रि को 12 और 1 बजे के अन्दर पोखू तथा शल्य देवता श्मशान घाट पर जाकर नहाते हैं और बाद में भविष्यवाणियां करते हैं। यह श्मशान घाट रुपिन और सूपिन नदियों का ही संगम है—जो संगम के बाद तमसा (टोन्स) नदी बन जाती है।

कर्ण को इस क्षेत्र में सबसे अधिक पूजनीय देवता स्वीकारा गया है। इसे न्याय का देवता कहा गया है। महाभारत के अनुसार कर्ण ने कौरव नरेश दुर्योधन का साथ दिया था। परन्तु यहां कर्ण को तटस्थ देव के रूप में मान्यता प्राप्त है। यहां तक कि किरमिर राक्षस जिसे शायद 'पोखू' देवता के रूप में मान्यता मिली है, उसकी भी पूजा-अर्चना यहां देवता के रूप में होती है। इन सबको पूजा और नचाया जाता है। इनके अलावा कौंल केदारी, नंदासर और रेणुका देवी की इस क्षेत्र में विशेष पूजा होती है। उन्हें देवता की तरह पूजा और नचाया जाता है।

जैसे कि पहले लिख चुके हैं कि कर्ण क्षेत्र—'नैंटवाड़' अंचल में कर्ण को न्याय का देवता माना जाता है। इसकी पुष्टि में देवरा गांव की भूमि में ही 'ओसाली तोक' में मकर संक्रांति के दिन 'हिण्डोड़ा' (एक प्रकार का गेंद का) मेला लगता है। देवरा के कोली हरिजन चमड़े की एक गेंद बनाते हैं, जिसे हाकी की स्टिक की तरह वाली लकड़ी (हिंडोडी) से खेलते हैं। मकर संक्रांति के दिन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'ओसाली तोक' के विशाल खेत में बीचोंबीच एक लकीर (ओड) खींची जाती है। केन्द्र में देबरा के हरिजन गेंद रखते हैं। उनके साथ कर्ण के मंदिर के पुजारी और चौकीदार 'नाथ' लोग भी रहते हैं। नाथों को कर्ण देवता की ओर से पगड़ी और चांदी की चपरास मिली होती है। शांति व्यवस्था हेतु नाथों को ही 'रेफ्री' का काम करना होता है।

इस गेंद के मेले में दो पार्टियां 'साठी' और 'पांसाठी' होती हैं। साठी पार्टी पांडवों की और 'पांसाठी' कौरव दल की मानी जाती है। हाकी की स्टिक के समान लकड़ी के माध्यम से दोनों दलों के खिलाड़ी गेंद को अपनी-अपनी तरफ खींचने का प्रयास करते हैं। गेंद को जो दल खींचकर अपनी तरफ ले जायेगा उसी की जीत मानी जाती है। 'कुणस' के पेड़ की छाल को पीसकर, रंग बनाकर गेंद को पिलाया जाता है। गेंद पर रंग टिकाते जाते हैं। फेंकने पर जिस दिशा में रंग जाता है, वह पहली जीत मानी जाती है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि गेंद और रंग यदि पांडवों की ओर जाता है तो उस वर्ष फसल अच्छी होती है। कौरवों की ओर गेंद और रंग जाता है तो उस वर्ष भयंकर आपत्ति आती है। कौरव क्षेत्र के गांवों के लोग कौरव दल में सम्मिलित होते हैं और पांडव क्षेत्र के लोग पांडव दल की ओर से खड़े होते हैं। दणगर्ण, गैंच्वाड़, हलटाड़ी और सुचाण गांव के लोग पांडव दल में रहते हैं।

इस गेंद के खेल से महाभारतकालीन कौरव-पांडवों के पारस्परिक स्पर्धा वाले खेलों की याद ताजा हो जाती है। वर्ष में जितने भी मेले होते हैं उनमें ऐसे ही खेल और गदा युद्ध वाले कौशल दिखाये जाते हैं। कर्ण को दोनों ओर का निर्णायक पंच स्वीकारा जाता है। लोक में ऐसा विश्वास है कि कर्ण देवता पक्षपात नहीं करता।

कर्ण देवता के क्षेत्र में कौरवों और पांडवों के नृत्य होते रहते हैं। परन्तु कर्ण की स्वीकृति ऐसे आयोजनों में आवश्यक होती है। वैसे यह देखा गया है कि कौरव क्षेत्र के लोग स्वयं वर्ष-भर दुर्योधन की पूजा-अर्चना में लगे रहते हैं और उनका पंचगाई-हर की दून क्षेत्र में दुर्योधन को हरगांव में ले जाकर पूजने, नचाने और अर्चन करने का कार्यक्रम होता रहता है। इसलिए वे कर्ण के क्षेत्र में कौरवों को नचाने बहुत कम आते हैं जबकि फतेहपर्वत के पांडवों के पक्षधर कर्ण क्षेत्र में आकर पांडवों को नचाने का आयोजन करते रहते हैं। उनकी प्रार्थना को कर्ण देवता का माली अथवा औतारु शीघ्र मान लेता है।

कर्ण क्षेत्र में द्रौपदी प्रथा के कई उदाहरण मिल जाते हैं। परन्तु इस क्षेत्र में विशेषकर एक पत्नी और एक पति की प्रथा का ही चलन है। वैसे बहुपत्नी प्रथा भी यहां मिल जाती है। रहन-सहन की दृष्टि से इनका झुकाव कौरव क्षेत्र के लोगों के अधिक नजदीक दिखाई देता है। इस क्षेत्र में रुपया देकर विवाह करने की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आम प्रथा मिलती है। बाल विवाह भी होते हैं।

आतिथ्य सत्कार की दृष्टि से इस अंचल में आम हिन्दू परिवारों का-सा रिवाज है। अतिथि को घर में पूरा सम्मान दिया जाता है। खाना खिलाने के बाद सम्मानपूर्वक विदा करने की एक सम्माननीय परम्परा इनमें मिलती है।

आज भी 'हर की दून' अंचल में दुर्योधन का राज है

'हर की दून' उत्तर प्रदेश के गढ़वाल मण्डल के अंतर्गत पड़ने वाले सीमान्त जनपद उत्तरकाशी के हिमाचल प्रदेश की सीमा से लगे बंदरपूंछ पर्वत श्रृंखला के पश्चिमी ढालवाले 'बुग्याल' (मखमली घास के मैदान) में स्थित है। हिमाचल से सटे हुए फतेह पर्वत से 'रुपिन' नदी निकलती है। फतेह पर्वत से जुड़ी बंदरपूंछ पर्वत श्रृंखलाओं की हिमानियों से निःसृत असंख्य जलधाराओं के मिलन से 'सूपिन' नदी का जन्म होता है। यही सूपिन 'हर की दून' की जान है। रुपिन और सूपिन अलग-अलग दिशाओं से बहकर नैटवाड़ के पास आकर संगम बनाती हैं। इन दोनों नदियों के संगम स्थल पर 'पसेखू' वीर का काठ का मंदिर है। इसके संगम हो जाने के बाद यह 'तमसा' टोन्स के नाम से विख्यात हो जाती है और कालसी के पास यमुना में मिल जाती है।

पर्यटक, पर्वतारोही, सैलानी और प्रकृति-प्रेमी, 'हर की दून' की सुन्दरता को देखने दूर-दूर से आते हैं। हर की दून अपनी नैसर्गिक सुंदरता के लिए जग-प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र में हिमाचल से मिले क्षेत्र में मांझीवन का अद्भुत क्षेत्र है। प्राकृतिक सुन्दरता का यह अंचल जहां पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करता है वहां यह अंचल अपनी विशिष्ट जीवन-शैली के लिए विख्यात है। वास्तव में यह सम्पूर्ण क्षेत्र 'समसू' देवता का अपना क्षेत्र है। यहां केवल उन्हीं का राज है। यहां का भगवान 'समसू' देवता ही है।

'समसू' माने कौरव नरेश दुर्योधन

'नैटवाड़' से हर की दून और जखोल क्षेत्र तक पंचगाई क्षेत्र है। आज शासन की दृष्टि से इस क्षेत्र को पंचगाई, अडोर और बड़ासू पट्टियों में बांटा गया है। जिसमें 21 गांव (कोटगांव, सिदरी, सांकरी, सौड़, डाटमीर, सटूड़ी, धारा, फिताड़ी, रेकचा, गंगाड़, पंवाणी, ओसला, सिरगा, जखोल, पांवमल्ला, पांवतल्ला, सुनकंडी, सौंणी, कासला, राला और लेवाड़ी) हैं। इन सभी गांवों में 'समसू' (दुर्योधन) को ही मुख्य देवता माना और पूजा जाता है। 'दुर्योधन' की आज्ञा पर ही यहां का सारा काम-काज चलता है। सरकारी अधिकारी एवं कर्मचारी भी यहां के रीति-रिवाजों के आगे कुछ नहीं कर सकते। जिस व्यक्ति पर दुर्योधन की 'आत्मा' आती है, वह व्यक्ति (माली) नाच कर जो कुछ भी आदेश अपनी प्रजा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को देता है, वही इस क्षेत्र के लोग करते हैं। चार-पांच वर्ष पहले की एक घटना है कि 'दुर्योधन' के 'माली' ने आदेश दिया कि हिमाचल के सीमावर्ती गांव वालों ने हमारे क्षेत्र में अतिक्रमण किया है। अत: उनकी सभी भेड़ों को लूटकर ले आओ। परिणामस्वरूप जखोल (दुर्योधन का मुख्य स्थान) में पंचायत हुई और रात में सभी गांवों के लोग एकत्र हुए और हिमाचल के गांवों की 300 से अधिक भेड़ों को अपने क्षेत्रों में ले आये। बड़ा झगड़ा हुआ। हिमाचल और उत्तर प्रदेश सरकार तक बात पहुंची। काफी बीच-बचाव किया गया, पर यहां के लोग नहीं माने। अंत में 'दुर्योधन' के पास ही इन लोगों ने अपनी फरियाद की कि क्या किया जाये? दुर्योधन ने आदेश दिया कि हिमाचल के गांव वाले दण्ड दें तभी उनकी भेड़ें वापस की जायें। 'समसू' का आदेश हिमाचल के गांव वालों को सुनाया गया। शासन की बात न मानकर दुर्योधन की बात को माना गया। दण्ड मिलने पर ही हिमाचल वालों की भेड़ें वापस की गईं।

इस सारे क्षेत्र में शासन का उतना भय नहीं है जितना कि 'दुर्योधन' का है। पटवारी, कनूनगो तथा तहसीलदार तक ये लोग अपनी शिकायतें पहुंचने ही नहीं देते। दुर्योधन की मुख्य गद्दी जखोल में है। इन गांवों की पंचायत यहीं बैठती है। जो भी निर्णय करना हो, यहीं जाकर किया जाता है। क्षेत्र में यदि कोई घटना घटित हो जाये तो इन गांवों के 'सयाणा' मिल कर निर्णय लेते हैं। वह निर्णय सबको मानना अनिवार्य होता है। इस क्षेत्र में 'ठाटीमारो' राजीनामा का विशेष महत्त्व है। बड़ी से बड़ी समस्या का हल आपसी राजीनामा 'ठाटीमारो' से कर लेते हैं। यदि कभी कोई विकट स्थिति आ जाए और 'राजीनामे' से भी हल न निकल सके तो 'समसू' (दुर्योधन) के मंदिर में जाकर 'दुर्योधन के माली' को पूजा जाता है, नचाया जाता है। जब वह नाचने लगता है तो उसके सामने समस्या रख दी जाती है। वह (देवता) जो भी आदेश दे, उसे बिना कुछ शिकायत किए सारे समाज द्वारा मान लिया जाता है।

'समसू' (दुर्योधन) के इस क्षेत्र में पदार्पण करने की कहानी कोटगांव जिला उत्तरकाशी के बाजगी श्री दिलदा और सुन्दरदास ने 'दुर्योधन के जागर' को गाकर इस प्रकार सुनाया—

द्वापर की बात है कि दुर्योधन महाराज, महाभारत युद्ध में पराजित होने के बाद कुल्लू कश्मीर से घूमते-घूमते जौनसार-बावर के हनोल क्षेत्र में पहुंचे। हनोल में तब तक महासू देवता का पूर्ण प्रभाव जम चुका था।

दुर्योधन ने 'महासू' देवता के सामने जाकर निवेदन किया कि हिमाचल से लगे इस भू-भाग के अंचल को उन्हें देने की कृपा करें। दुर्योधन की प्रार्थना को महासू देवता ने सहर्ष स्वीकार किया और कहा कि दुर्योधन, तुम्हारी प्रार्थना के अनुसार तुम्हें केदारकांठा और बंदरपूंछ अर्थात् हर की दून वाला अंचल देता हूं। जाओ, उस

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क्षेत्र में जाकर प्रसन्नता से राज करो। परन्तु ध्यान रहे कि वहां की प्रजा को कष्ट न हो, क्योंकि तुम प्रजा का ध्यान कम ही रखते हो। दुर्योधन ने महासू देवता को वचन दिया कि वह अपने वचन का पालन करेगा और सदैव प्रजा के हित-चिंतन में अपना समय बितायेगा।

महासू से आशीर्वाद लेकर दुर्योधन चल पड़ा। हनोल से वह पंचगाई क्षेत्र की रमणीय धरती की ओर चलने लगा तो 'सान्दरा' के पास किरमिर दानौ (दानव) से उसका मुकाबला हो गया। किरमिर दानौ ने कहा कि इस सारे क्षेत्र का राजा तो मैं हूं। तुम कहां जा रहे हो? दुर्योधन और किरमिर दानौ का 'संदरा' में युद्ध हो गया। दुर्योधन ने आकाशी बिजली गिराकर किरमिर दानौ का सिर काट लिया। किरमिर का सिर तमि 'तमसा' में जाकर उल्टा बहने लगा। अर्थात् नदी के उद्गम क्षेत्र की ओर जाने लगा। जब दुर्योधन रुपिन और सूपिन के संगम स्थल पर पहुंचा तो किरमिर के सिर को देखकर आश्चर्य में पड़ गया। कटे सिर से किरमिर दानौ ने दुर्योधन से कहा—"दुर्योधन महाराज, यहां से आगे मैं नहीं जा सकता। मुझे भी कुछ भूमि का भाग दे दें तो कृपा होगी।" दुर्योधन ने रुपिन और सूपिन में संगम पर ही किरमिर दानव को स्थापित किया और कहा कि यह इलाका तुम्हारा रहा। यहां पर तुम्हारी पूजा होती रहेगी। आज इस स्थान पर एक मंदिर है, जिसे 'पोखू' देवता के नाम से स्थानीय लोग पूजते हैं। इसी संगम के गांव का नाम नैंटवाड़ है। नैंटवाड़ के पोखूवीर का काठ का मंदिर ही किरमिर दानव का मंदिर है। इस 'पोखू' की उस क्षेत्र में बड़ी मान्यता है। नैंटवाड़ से ऊपर 'हर की दून' और जखोल क्षेत्र में दुर्योधन ने अपना राज स्थापित किया। तभी से दुर्योधन का इस क्षेत्र में एकछत्र राज्य चल रहा है।

नैंटवाड़ से ऊपर जखोल व हर की दून के क्षेत्र के लोगों की मान्यता है कि महाभारत काल से उनके समसू (दुर्योधन) देवता, अपनी प्रजा का निरंतर ध्यान करते आ रहे हैं। सुनकुण्डी, रेकचा, राला, साकरी, सौंणी, सटूड़ी और पंवाणी में मंदिर नहीं है। बाकी सभी गांवों में दुर्योधन के तीन खण्डी काठ के मंदिर हैं। प्रवेश वाले खण्ड तक ही बाजगीर और औरतें जा सकती हैं। दूसरे खण्ड तक केवल सवर्ण पुरुष और तीसरे खण्ड में केवल पुजारी जा सकते हैं। जिन गांवों में दुर्योधन के मंदिर हैं, उनमें मंदिर के नजदीक बाजगियों के घर निश्चित रूप से होते हैं। मंदिर के आंगन में प्रातः और सायंकाल तथा रात्रि में देवता (दुर्योधन) की 'नौवती' बजती है। दुर्योधन की भव्य मूर्ति जखोल के मुख्य मंदिर में ही रहती है। अन्य गांव के मंदिरों में कोई मूर्ति नहीं रहती। जब मुख्य मंदिर से दुर्योधन की मूर्ति की डोली आती है तो वही मूर्ति सभी गांवों में मंदिरों में स्थापित कर सजायी जाती है। मूर्ति की डोली के दूसरे गांव चले जाने पर मूर्ति भी चली जाती है। इस तरह ये मंदिर बिना मूर्ति के ही रह जाते हैं। परन्तु पूजा तो इन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मंदिरों में सुबह-शाम (बिना मूर्ति के) नियमित रूप से होती रहती है। जिन गांवों में मंदिर नहीं हैं, वहां के गांव के पंचायती चौक में मूर्तिवाली डोली स्थापित कर पूजा की जाती है और मेला लगाया जाता है।

जैसा कि पहले कहा गया है कि दुर्योधन अपनी प्रजा का ध्यान स्वयं रखते हैं। उनका देश भ्रमण आषाढ़ महीने के 21 गते से प्रतिवर्ष प्रारम्भ होता है। जखोल में इन सभी 21 गांवों के सयाणा एकत्र होते हैं। वहीं निश्चय किया जाता है कि दुर्योधन की राज्य भ्रमण यात्रा में कहां-कहां के सयाणा लोग और किस-किस गांव के बाजगी भाग लेंगे ? परन्तु 'जखोल' के मुख्य पुजारी और मुख्य बाजगी दुर्योधन की डोली के साथ सभी गांवों में आवश्यक रूप से जाते हैं। प्रत्येक गांव के सयाणा और बाजगी स्थान-स्थान पर दुर्योधन की डोली का स्वागत करने हेतु मिलते रहते हैं।

दुर्योधन के पुजारी जखोल के और फिताड़ी ग्राम के खल राजपूत होते हैं। जखोल के पांच और फिताड़ी का एक पुजारी इस शोभा यात्रा में भाग लेता है। पुजारियों के परिवार निश्चित हैं। उन्हीं में से पुजारी इस राज्य भ्रमण यात्रा में भाग लेते हैं।

पुजारी दुर्योधन की पूजा-अर्चना कर मूर्ति को सजाते हैं। प्रतिवर्ष 21 गते आषाढ़ दुर्योधन की डोली जखोल से सौड गांव के मंदिर में गाजे-बाजों के साथ पहुंचाई जाती है। सायंकाल काल देवता की पूजा धूप-दीप से की जाती है। आरती उतारी जाती है। रात-भर नाच-गाना चलता रहता है। देवता की वंशावली बाजगी गा-गाकर सुनाते रहते हैं। वैसे ही बाजा बजाया जाता है और उसी के अनुरूप नृत्य भी किया जाता है। 22 गते देवता का मेला लगता है। 23 गते 'समसू' (दुर्योधन) सिदरी गांव पहुंचाये जाते हैं। वहां भी उसी तरह का आयोजन होता है और 24 गते आषाढ़ मेला लगता है। 25 गते आषाढ़ दुर्योधन महाराज अपनी दूसरी राजधानी कोटगांव पहुंच जाते हैं। कोटगांव में जखोल की तरह पूरे 21 गांवों की ओर से दुर्योधन का भव्य स्वागत किया जाता है। 25, 26, 27 गते आषाढ़ कोटगांव में मेला लगता है और रात-दिन नाच-गान होता रहता है। 28 गते आषाढ़ दुर्योधन की डोली बड़ासू पट्टी के डाटमेर गांव में पहुंचती है। वहां 29 गते विशाल मेला लगता है। 30 गते देवता को विश्राम दिया जाता है। विश्राम के दिन केवल धूप-दीप और आरती ही होती है। रात में नृत्यों का आयोजन किया जाता है। ऐसे अवसरों को 'बैठा मेला' कहते हैं। सावन के पहले दिन दुर्योधन का आगमन फिताड़ी गांव में होता है। सावन के महीने में दूध-घी से बने व्यंजनों से देवता को प्रसन्न किया जाता है। 2 गते वहीं (फिताड़ी गांव में) 'सौणी' का प्रसिद्ध मेला लगता है। 'सौणी' के मेले के दिन ही रात को दुर्योधन की डोली अपने मुख्य स्थान जखोल पहुंच जाती है। जखोल के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दुर्योधन मंदिर के विशाल प्रांगण में 3-4 गते सावन का विशाल मेला 'सौणी' लगता है। ऐसे मेलों में स्त्री-पुरुषों के सम्मिलित नृत्य देखने योग्य होते हैं। सावन 5 गते देवता का विश्राम का दिन होता है। उस दिन 'बैठा मेला' लगता है।

इसी तरह दुर्योधन पुनः 6 गते सावन को धारा गांव पहुंचते हैं। वहां भी उसी तरह मेला लगता है। गांव वाले दुर्योधन की डोली उठाकर दूसरे गांव पहुंचा आते हैं। यह क्रम सभी गांवों में इसी तरह सम्पन्न किया जाता है। धारा में कासना, लेवाड़ी, सिरमा, गंगाड़, पंवाणी होते हुए ओसला गांव में दुर्योधन की डोली सावन 19 गते पहुंच जाती है। यहां देवता 20,21 और 22 गते सावन तक रहता है। मेला लगता है। नृत्य होते हैं। मस्ती का आलम चारों ओर दिखाई देता है। खाना-पीना चलता रहता है। इस प्रकार ओसला में दुर्योधन की यात्रा का एक चक्र पूरा हो जाता है।

ओसला से केवल 7 कि० मी० की दूरी पर हर की दून का मनोहारी क्षेत्र शुरू हो जाता है। हर की दून में छोटी-छोटी जलधाराएं आड़ी-तिरछी होकर बहती हैं। रंग-बिरंगे फूल हजारों की संख्या में खिले हुए दिखाई देते हैं। देवदार, कैल और चीड़ के वृक्षों की घनी छाया यहां के सौंदर्य को चार चांद लगा देता है। हर की दून में मृग वरंड़, काखड़, कस्तूरा और मुनाल पक्षी मुख्य आकर्षण के केन्द्र हैं। यहाँ से 'स्वर्गारोहिणी' मात्र 12 कि० मी० दूर स्थित है। सैकड़ों पर्यटक यहीं से चमनोत्री और गंगोत्तरी की ओर पदारोहण करते हैं।

बहुत से समाजशास्त्री इस अंचल में रहकर कौरव नरेश दुर्योधन के अनुयायियों का जीवन दर्शन देखने के लिए इस अंचल में विचरण करते हैं।

'दुर्योधन' की यात्रा का दूसरा चक्र 'रक्षा फेर' के नाम से शुरू होता है। इसमें भी वही कार्यक्रम होता है। परन्तु इस यात्रा में देवता पुनः एक गांव से जाने के बाद दुबारा उसी गांव में जाता है। 15 गते पौष को अपनी यात्रा पूरी कर दुर्योधन महाराज अपनी राजधानी जखोल पहुंच जाते हैं। उस दिन जखोल के प्रांगण में सम्पूर्ण 'कौरव क्षेत्र' के स्त्री-पुरुष एकत्र होकर मस्ती में नाचते-गाते हैं। कई बकरियों को काट कर मांस-मदिरा का प्रयोग होता है। स्त्री-पुरुष मजे में खाते रहते हैं और मस्ती में आकर नाचते रहते हैं। ऐसे वातावरण में सम्पूर्ण जखोल क्षेत्र की खुशी देखने योग्य होती है। क्योंकि उस दिन दुर्योधन प्रजा की रक्षा कर लौट आते हैं। उनके भक्तों का मानना है कि कोई भी उनका मुकाबला नहीं कर सकता।

दुर्योधन के अलावा मांत्रियों (अप्सराओं) का इस क्षेत्र में विशेष डर समाया होता है। प्रत्येक गांव में जैसे दुर्योधन के मंदिर हैं। वैसे ही गांव के बाहर मांत्रिकाओं (अप्सराओं) के मंदिर भी होते हैं। इन अप्सराओं से ये लोग इतना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

डरते हैं कि अपने मकान की छत पर एक छोटा-सा मांत्रिका का मंदिर भी बना देते हैं। इन लोगों का विश्वास है कि अल्प आयु में जो कन्यायें मर जाती हैं, वहीं बणकी (अप्सरा) बन जाती हैं। ये 'बणकियां' (मांत्रिकायें) हर समय छल करती रहती हैं। अशुभ करती रहती हैं। इसीलिए उनके कोप को शांत करने हेतु बकरे की बलि देते हैं और हलुवा का प्रसाद बांटते हैं।

पड़ौसी जनपद टिहरी-उत्तरकाशी के प्रभाव में आकर यहां नाग देवता की पूजा भी होती है। नाग देवता को गाय का दूध चढ़ता है। इस सारे इलाके में गाय के अलावा भैंस देखने भर को भी नहीं मिलेगी। पहले इस इलाके में गाय का दूध कोई नहीं पीता था, दूध से घी बनाया जाता था, जिसे नाग देवता के पूजन में खर्च किया जाता था। छाछ (मट्ठा) अवश्य पी लेते थे। अब दूध की चाय पीने लगे हैं परन्तु एक गाय के दूध का उपयोग केवल देवताओं के धूप-दीप करने में ही करते हैं। सिद्धले, विद्धले और नागिले का भी पूजन इस क्षेत्र में होता है।

खस राजा के वंशज

इस क्षेत्र का प्रामाणिक इतिहास कहीं नहीं मिलता है। कथागीतों के आश्रय पर यहां के लोग अपने आपको महाभारतकालीन खस राजा के वंशज बतलाते हैं। कहते हैं कि महाभारत के युद्ध में उनके राजा ने कौरव नरेश दुर्योधन का साथ दिया था। इस सारे क्षेत्र के लोग अपने आपको 'खस राजपूत' कहते हैं और दुर्योधन को अपना कुल देवता और ईश्वर मानते हैं। इस इलाके में हिन्दुओं के अन्य देवताओं का कोई महत्त्व नहीं है। वे अन्य देवताओं के विषय में जानते तक नहीं हैं। अब धीरे-धीरे हिन्दू संस्कारों का यहां प्रवेश पा रहा है।

दुर्योधन की प्रजा के इन इक्कीस गांवों में पूर्णत: 'खस राजपूत' ही रहते हैं। अपना सभी काम ये लोग स्वयं ही करते हैं। ब्राह्मणों का प्रभाव इस क्षेत्र में बिल्कुल भी नहीं है। उपले कोटगांव में कुछ ब्राह्मण परिवार हैं। परन्तु वे दुर्योधन को न मान कर लव-कुश को मानते हैं। इसी तरह दो-चार परिवार जखोल में भी ब्राह्मणों के हैं—वे भी उपले कोटगांव के ब्राह्मणों की तरह लव-कुश के भक्त हैं। दुर्योधन को यहां के ब्राह्मण अपना इष्ट नहीं मानते हैं।

'खस राजपूतों' के इलाके में बाजगियों का विशेष आदर है। बाजगी इनके जीवन के अभिन्न अंग हैं। बिना बाजा बजाये और पूजा-अर्चना किये ये लोग भोजन तक नहीं करते। मन्दिर के आगे प्रात: और रात में 'नौबती' अवश्य बजती है। बाजगियों के अतिरिक्त अन्य हरिजन जाति के लोग भी होते हैं जो इस समाज के लिए, खेती के लिए औजार, बर्तन बनाने और लकड़ी के विभिन्न कार्यों को सम्पन्न करने में लगे रहते हैं।

इस सम्पूर्ण क्षेत्र में लकड़ी के दुपरे, दिपुरे और चौपुरे मकान होते हैं। लकड़ी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पर नक्काशी का अति सुन्दर कार्य देखने को मिलता है। नीचे की मंजिल में गाय-बैल, दूसरी व कभी-कभी तीसरी मंजिल तक भेड़-बकरियां और सबसे ऊपरी मंजिल में परिवार के सदस्य रहते हैं। अनाज, वस्त्र और जीवनोपयोगी सामग्री के लिए प्रत्येक घर के सामने एक लकड़ी का 'कोठार' होता है। 'कोठार' के 'दरवाजे' पर सांकल लगी रहती है। जिसका एक छोर घर के मालिक के वक्ष तक पहुंचा होता है। सांकल पर घंटियां लगी रहती हैं। यह प्रबन्ध इसलिए करना आवश्यक समझते हैं कि यदि कोई चोर या दुष्ट व्यक्ति इनके संग्रह वाले कोठार से कुछ चुराने का कुप्रयास करे तो उन्हें स्थिति का ज्ञान हो जाये। ताकि वे उसका मुकाबला कर सकें।

'खस राजपूतों' के इस इलाके में सफाई को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। इलाका काफी ठण्डा है। लोग नहाते भी कम ही हैं। यहां तक कि शौच करने के बाद पानी का उपयोग तक नहीं करते। पत्थर या घास से सफाई कर आगे बढ़ जाते हैं। वैसे घर के अन्दर जूते नहीं ले जाते। इस इलाके की एक विलक्षण बात यह अवश्य है कि हर व्यक्ति को ये लोग 'नमस्कार' करना नहीं भूलते। जान-पहचान न होने पर भी हर छोटा-बड़ा, स्त्री-पुरुष, आगन्तुक का स्वागत हाथ जोडकर 'नमस्कार' कहकर करता है। घर के सामने पहुंचने पर भी घर के अन्दर आने के लिए नहीं कहेंगे। परन्तु अगर आप इनके घर के अन्दर प्रवेश कर लेंगे तो आपका स्वागत एक मेहमान की तरह करेंगे। पहचान होने पर घर आये मेहमान को भोजन देने से पहले 'टीका' करते हैं। यदि कोई इन्हें प्रतिदान में कुछ देना चाहे तो बहुत बुरा मानते हैं।

इन लोगों का मुख्य भोजन चौलाई (रामदाना), आलू, फफरा, मडुवा और दाल में सेम मुख्य हैं। कुछ गांवों में गेहूं की खेती होती है; परन्तु उपज बहुत ही कम होती है। यह सारा इलाका मखमली घास की पहाड़ियों का है। चुगान के लिए भेड़-बकरियों के लिए उपयुक्त क्षेत्र है। इसीलिए इस क्षेत्र के लोगों का मुख्य व्यवसाय भेड़-बकरी पालन है। गरीब से गरीब व्यक्ति के भी 50 से 100 भेड़ या बकरियां होती हैं। सम्पन्न परिवारों में तो भेड़-बकरियों की संख्या हजारों में होती है। पड़ौसी जिला टेहरी के कुछ लोगों की भेड़-बकरियों को ये लोग चुगान के लिए ले आते हैं। इस कार्य के लिए वे उनसे चुगाने के रुपये लेते हैं।

भेड़ों की ऊन से बने बस्त्रों का ही प्रयोग यहां के निवासी करते हैं। बल्कि यों कहें कि यहां के जन-जीवन को भेड़-बकरियों ने ही संवारा है तो अत्युक्ति न होगी। भेड़ की ऊन से स्वयं बनाये हुए कपड़े पुरुष 'फर्जी' (कोट, सोंतण, पायजामा और दीडू, कमरबंध का रस्सा) बांधते हैं। उसी तरह महिलायें भी 'फर्जी' और 'सोंतण' पहनती हैं। सिर पर ढाटू लगाती हैं। गहनों का यहां बहुत रिवाज है। सोने की बड़ी-बड़ी 'नथ' महिलायें पहनती हैं। [illegible] महिलायें [illegible] नथ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पहनती हैं।

भेड़-बकरियों के मांस से इनका सारा साल कटता है। भेड़ों की खाल से ये लोग बड़े-बड़े 'फांसे' (थैले) बनाते हैं जिनमें अनाज भर कर अपनी पीठ पर लाद कर ले आते हैं। भेड़-बकरियों को बेचकर अपने लिए चावल, गेहूं, गुड़ आदि वस्तुएं खरीद कर ले आने का यहां आम रिवाज है।

कौरव-नरेश दुर्योधन के इस इलाके में कर्मकाण्ड को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। न ही यहां कोई संस्कार किये जाते हैं। बच्चे का जब जन्म होता है तो ये लोग जच्चा से कोई 'छुआछूत' नहीं करते। जिस व्यक्ति पर 'समसू' (दुर्योधन) नाचता है—वह केवल उस महिला के हाथ का पानी नहीं पीता। शेष सभी लोग उसके हाथ का बना भोजन करने में अशुद्धि नहीं समझते। तीन महीने तक बच्चे को धूप नहीं दिखाई जाती है। जिस दिन धूप दिखाई जायेगी, उसी दिन उसका नाम रख दिया जाता है। जिस व्यक्ति को पुत्र या पुत्री पैदा होती है—उसकी टोपी में हरी दूब के तिनके ठोंस दिये जाते हैं। ये हरी दूब के तिनके नामकरण के दिन तक टोपी के कोने पर खोंस दिये जाते हैं।

संस्कारों का कोई महत्त्व नहीं

इसी तरह परिवार में यदि कोई मृत्यु हो जाती है तो कोई संस्कार नहीं होता। मरने वाला चाहे बूढ़ा हो, जवान हो या बच्चा, उसे गाजे-बाजों के साथ नदी के किनारे ले जाकर जला देते हैं। नदी दूर हो तो जंगल में ही जला देते हैं। तीन दिन के बाद हलुवा-पूरी पका कर गांव वाले साथ-साथ खाते हैं और फिर हर काम पूर्ववत् चलने लगता है। कहीं-कहीं मृतक के परिवार का मुखिया घर से अपनी रिश्तेदारी में चला जाता है। 10-15 दिन में जब लौटता है तो सब मिल कर हलुवा-पूरी का भोजन करते हैं। पहले बकरे काटे जाते थे। बाजगी अथवा हरिजन आज भी तीसरे दिन भेड़ या बकरा काटकर मृतक का श्राद्ध करते हैं। वैसे यहां 'श्राद्ध या वर्षी' करने का रिवाज ही नहीं है। बस केवल एक त्योहार को न मनाकर, अपना शोक प्रकट करते हैं। माघ महीने में यदि किसी परिवार में मृत्यु हो गई तो फागुन के महीने का त्योहार वह परिवार नहीं मनायेगा। चैत्र के महीने त्योहार मनाने के लिए गांव वाले उन्हें तैयार करेंगे कि चलो जो हो गया सो हो गया—हम तो जिंदा हैं। जिंदा रहने का मतलब ही खुशी मनाना है और फिर पूर्ववत् बारहों महीनों के त्योहार अथवा मेलों में सब मिलकर खुशियां मनाने लगते हैं।

विवाह के समय भी यहां कोई संस्कार नहीं किये जाते हैं। लड़के का पिता या घर का मुखिया लड़की के पिता के घर जायेगा। लड़की पसंद आने पर लड़के का पिता रुपयों की बात करता है। कभी-कभी लड़की का मूल्य दो से पांच

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हज़ार तक चांदी के रुपयों में आंका जाता है। जब सारी शर्तें पूरी हो जाती हैं तो लड़के का पिता अपने परिवार या गांव के 4-5 आदमियों के साथ लड़की के पिता के यहां रुपया देकर कन्या को बहू बनाकर 'ढोल-दमाऊ' (गाजों-बाजों) के साथ अपने गांव ले आता है। बारात में लड़का (दूल्हा) नहीं जाता। 'दूल्हा' घर पर ही रह कर 'दुल्हन' की बारात की अगवानी करता है। लड़की के गांव व परिवार कन्या-पक्ष के बारातियों का भव्य स्वागत करते हैं। लड़की के परिवार को एवं गांव के लोगों की दावत में मांस-मदिरा का अधिक से अधिक प्रयोग किया जाता है। हां, यदि लड़की 'छुटेड्' है, अर्थात् एक घर से उसका छुटकारा हो गया है तो उसके किसी के घर जाने में 'गाजे-बाजों' का प्रयोग नहीं होता परन्तु दावत उसी प्रकार होती है।

इस इलाके में 'छूत प्रथा' है। आज भी इस क्षेत्र में 8-10 वर्ष की लड़कियों की शादियां उपरोक्त ढंग से सम्पन्न की जाती हैं। रुपये लेकर लड़की को लड़के के घर पहुंचा देना ही यहां की शादी का होना है। लड़की छोटी आयु की होती है, वह विवाह का अर्थ तक नहीं समझती। जब उसे शादी का अर्थ समझ में आने लगता है तो वह अपने लिए उपयुक्त जीवन-साथी की कल्पना करने लगती है। यदि उसे अपना पति पसंद हो तो सब कुछ ठीक-ठीक चलता है। नापसंदगी की स्थिति में वह अपने मन के मुताबिक घर बदल सकती है। कई घरों से 'छूट' करने वाली महिला का इस समाज में विशेष आदर होता है अर्थात् सबसे अधिक 'पति' और अनेक घर बदलने वाली महिला को इस समाज में बहुत आदर की दृष्टि से देखा जाता है क्योंकि उसका मूल्य हर नये घर में बढ़ता ही जाता है।

'छूट' का अर्थ साधारण नहीं है। जब कोई महिला 'छूट' चाहती है तो वह या तो अपने पति का घर छोड़कर अपने मायके रहने लगती है या किसी मनचाहे युवक के घर में जाकर रहने लगती है। मायके से भी वह अपने मनचाहे युवक या चहेते पुरुष के घर जाकर पत्नी की तरह रहने लगती है। कभी-कभी युवती का पिता स्वयं अपनी पुत्री के लिए दूसरे घर का प्रबन्ध करता है। ऐसी दशा में लड़के का पिता पहले वाले पति के पिता द्वारा दिये गये रुपयों के अलावा कुछ राशि लड़की के पिता को और लड़की के गांव वाले पंचों को भी 'छूट' का हक देकर लड़की को ब्याह कर अपने लड़के के लिए ले आता है। मान लीजिए, पहले पति से लड़की के पिता को पांच हजार मिले थे, अब दूसरा पति या उसका पिता पांच हजार उस युवती के पहले पति को चुकायेगा, लगभग इतनी ही राशि युवती के पिता को और दो-तीन हजार गांव की पंचायत को देकर पहले पति से युवती की 'छूट' करवा कर अपने घर ले जायेगा। अगर दूसरे घर में भी युवती का मन न लगा और उसका चाहने वाला मिल गया तो वह महिला उस घर से भी तीसरे घर जा सकती है। इसी तरह 'छूट' की राशि बढ़ती ही जाती है। [illegible]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में ऐसी महिलायें भी आई हैं जिनको सात-सात, आठ-आठ बार 'छूट' हुई है और उनके 'छूट' का रुपया लाखों तक पहुंचा है। ऐसी कई 'छूट' को करने वाली महिला का समाज में आदर बढ़ता जाता है। परन्तु छूट की रस्म में जब तक पहले पति के रुपये नहीं दिये जाते, तब तक समाज में विवाह होने की मान्यता नहीं मिलती।

महिलाओं का इस समाज में बहुत सम्मान होता है। पुरुष अपनी पत्नियों के इशारों पर नाचते रहते हैं। उन्हें सदा भय बना रहता है कि कहीं उसको (पत्नी को) कष्ट हुआ तो वह कहीं 'छूट' न करवा ले। 'छूट' होने की स्थिति में पहले पति को भी दूसरी पत्नी अधिक रुपये देकर मिलती है या उसे भी कहीं से किसी महिला को अपने घर में बिठाना पड़ता है। आखिर उसकी 'छूट' के रुपये तो उसे ही देने होते हैं। अतः इस समाज का प्रत्येक पुरुष ऐसी स्थिति में नहीं आने देता है कि उसकी पत्नी 'छूट' करवाये।

जहां इस क्षेत्र में 'छूट' की प्रथा है, वहां बहुपति प्रथा के भी दर्शन होते हैं। तीन-चार भाइयों की एक पत्नी का होना भी इस क्षेत्र में देखा गया है। दो भाइयों की एक पत्नी का होना तो यहां साधारण-सी बात है। पुरुष तथा महिलाओं ने यह स्वीकार किया कि दो भाइयों की एक पत्नी का होना सबसे उत्तम है। पुरुषों ने आर्थिक दृष्टि से इस प्रथा को उत्तम बताया। उन्होंने कहा कि इस तरह से परिवारों का बंटवारा नहीं होता। सम्पत्ति की सुरक्षा रहती है। पारस्परिक प्रेम बना रहता है। बच्चों में प्रेम बना रहता है। फिर मुख्य कारण यह भी है कि हम बार-बार 'छूट' के झंझट से बच जाते हैं।

महिलाओं का तर्क तो और भी सार्थक लगा। उन्होंने बताया कि दो भाइयों की पत्नी बनना तो सौभाग्य की बात है। एक पति घर में रहता है तो दूसरा भेड़-बकरियों के साथ होता है। घर की जिम्मेदारी दोनों मिलकर निभाते हैं। दोनों का प्यार भी भरपूर मिलता है। बच्चों को दोनों का अगाध प्रेम होता है। कुछ महिलाओं ने तो सम्मिलित प्रतिक्रिया व्यक्त की और स्पष्ट कहा—"बहुत से पति सौभाग्य से मिलते हैं। मिलने पर दुर्भाग्य का समय आता ही नहीं। दैवयोग से यदि कोई एक-दो पति मर भी गये तो भी हम सुहागिनें ही रहती हैं। हमारे यहां तो कोई विधवा होती ही नहीं। हम बेसहारा कभी रहती ही नहीं। आर्थिक रूप से हमें कभी दूसरे परिवार के लोगों का सहारा नहीं ढूंढ़ना पड़ता। हमें आपके समाज की तरह कोई पुरुष दहेज के लिए नहीं मारता। रुपयों के लिए सुना है कि आपके समाज वाले लड़कों को बेचते हैं। हमारे यहां औरत की इज्जत है—जिसे हमारी जरूरत होगी, वह दाम चुकाकर हमारे कदम चूमेगा। हम जिसे चाहेंगी, उसकी होकर रहेंगी। जो धोखा देगा या प्यार नहीं देगा, उसे छोड़ कर दूसरा घर देखेंगी। भला कोई हाथ उठाकर तो देखे?"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सचमुच, इस क्षेत्र में औरतों की बहुत इज्जत है। पुरुष समाज उनके मान-सम्मान की रक्षा ही नहीं करता बल्कि उन्हें पूर्ण स्वच्छन्दता भी प्रदान करता है। यही महिलायें, पति अथवा पतियों के रहते हुए भी यौन स्वच्छन्दता प्राप्त करने में पीछे नहीं रहतीं। पति अपने स्थान पर है। जो मन को भाया, उसे प्यार करना कोई अपराध थोड़े ही है ? यह मानकर ये चलती हैं। गांवों में कभी सवर्ण महिला का अवैध सम्बन्ध किसी बाजगी तक से हो जाता है तो कभी किसी बाजगी अथवा हरिजन महिला का यौन सम्बन्ध किसी सवर्ण पुरुष से भी हो जाता है। ऐसी स्थिति में बुरा तो मानते हैं परन्तु समाज से उन्हें दण्डित नहीं करते। यदि ऐसे सम्बन्धों के फलस्वरूप बच्चे का जन्म हो जाता है तो वह बच्चा उसी का माना जाता है जिसकी वह पत्नी होती है। माना राणा या रावत खस ठाकुर की पत्नी के साथ बाजगी पुरुष के अवैध प्रेम के कारण बच्चा हो जाता है तो वह बच्चा राणा या रावत ही माना जायेगा। उसी तरह यदि हरिजन अथवा बाजगी महिला के गर्भ से किसी राणा खस व ठाकुर का बच्चा पैदा होगा तो वह बच्चा उसी हरिजन अथवा बाजगी का माना जायेगा जिसकी वह पत्नी होगी। इसमें भी इस समाज का अपना विशिष्ट दर्शन है। उनका कहना है कि बीज चाहे कोई डाले फसल तो उसी की मानी जायेगी, जिसके खेत में फसल उगेगी। अर्थात् जिसका खेत है, उसकी ही फसल होगी।

यदि इस क्षेत्र की महिलायें पर-पुरुष से अवैध सम्बन्ध रखती हैं तो समाज उन्हें निंदनीय नहीं समझता। यदि चार भाइयों की अलग-अलग पत्नियां हों और कोई पत्नी किसी अपने देवर से या अन्य तीन जेठ अथवा देवरों से यौन सम्पर्क स्थापित करना चाहे तो उसे बुरा नहीं समझा जाता, जिसे औरत दिल से चाहे उससे सम्बन्ध बना सकती है। महिलाओं को पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है कि वे स्वच्छन्द होकर जीवनयापन करें। यहां की मान्यता है कि महिलाओं की स्वतंत्रता पर कोई रोक नहीं लगाई जानी चाहिए।

ऐसी मान्यता पर यहां के नवयुवक भी कहते हैं कि आंखों की ओट होनी चाहिए। हमारी नजर में पत्नी ऐसा कृत्य न करे—बस ! पीठ पीछे क्या होता है ? कौन जाने ? उन्होंने कहा कि आपके सभ्य समाज में क्या आंखों की ओट में ऐसे ही काण्ड नहीं होते ? प्रसंग को संक्षिप्त करते हुए एक युवक ने कहा—पिता तो मां ही बता सकती है कि कौन है ? चाहे वह किसी की भी मां क्यों न हो ?

वैसे इस क्षेत्र के युवक एक ही पत्नी रखने के पक्षधर होते जा रहे हैं। पुरानी प्रथाओं को समाप्त करने पर लगे हैं। अब इस क्षेत्र में समीपवर्ती क्षेत्रों के संस्कारों का प्रभाव पड़ता जा रहा है। फिर भी बहुपति प्रथा के साथ बहुपत्नी प्रथा भी इस क्षेत्र में है। परन्तु बहुपत्नी प्रथा के उदाहरण बहुत कम हैं। अधिक सम्पत्ति न

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

होने की स्थिति में भी कई पुरुषों की 3-4 या इससे अधिक पत्नियां हैं। फिर भी स्त्रियों में स्वच्छन्दता पर्याप्त मात्रा में देखने को मिलती है।

विवाह के लिए आम रिवाज यह है कि खस राजपूतों के विवाह खस राजपूतों में, हरिजनों के हरिजनों में, बाजगियों के बाजगियों में ही होते हैं। ममेरे-फुफेरे भाई-बहनों में भी विवाह हो जाते हैं। पर यह रिवाज इतना कठोर नहीं है कि ऐसे विवाह होने ही चाहिए। एक मुख्य बात यह है कि खस राजपूत अपनी लड़कियों को ब्राह्मणों को ब्याह देंगे पर उनकी लड़कियों से कोई भी खस राजपूत ब्याह गहीं करता। ब्राह्मण लड़की से विवाह करना वे पाप समझते हैं। कोटगांव की खस राजपूत लड़कियों का ब्याह उपले कोटगांव के ब्राह्मणों के यहां होता रहा है, इन ब्राह्मणों की लड़कियों का विवाह फतेहपर्वत के अंचल में बसे ब्राह्मणों के यहां, यहीं की रीति के अनुसार होता है।

दुर्योधन के राज में जहां इस प्रकार की सामाजिक रीतियों के दर्शन होते हैं, वहां इस क्षेत्र की अपनी भौगोलिक विशेषतायें भी हैं। भौगोलिक स्थिति के कारण सर्दियों में यहां बर्फ से सभी पहाड़ियां ढक जाती हैं। बाहर का आना-जाना प्राय: वन्द-सा हो जाता है। स्वच्छन्द होकर लोग घरों के भीतर गीत गाते और नाचते हैं। 28 गते पौष 'हतोली' के दिन वर्ष-भर से विशेष रूप से पाले हुए बकरों को काटते हैं। माघ के महीने में ससुराल से सभी लड़कियां मायके आ जाती हैं। इष्ट मित्र भी इन्हीं दिनों आते हैं। मायके आई हुई युवतियां स्वच्छन्द होकर गाती और नाचती हैं। माघ महीने-भर मांस और शराब का भोजन होता है। रात-दिन गीत और नृत्यों का आयोजन होता रहता है। इनका 'मघोज' का त्योहार सबसे बड़ा महत्त्वपूर्ण त्योहार है। बैशाख के महीने का त्योहार भी अपने ढंग का निराला त्योहार है। यों तो वर्ष-भर यहां त्योहार ही मनाये जाते हैं और मेले ही लगे होते हैं।

दुर्योधन की भूमि में जहां प्रकृति स्वच्छन्द होकर सौन्दर्य प्रदान करती है— वहां इस धरती के मानव भी स्वच्छन्द होकर नाचते-गाते ही नहीं बल्कि स्वच्छन्द होकर जीवन जीते भी हैं। 'हर की दून' की ओर आने वाले पर्यटकों, पर्वतारोहियों, सैलानियों एवं प्रकृति प्रेमियों के लिए यह क्षेत्र आकर्षण से भरा हुआ है। यहां की प्रकृति जहां रमणीय है वहीं यहां के मानव भी अत्यन्त भोले-भाले और सरल प्रकृति के जीव हैं।

इस क्षेत्र में पहुंचने के लिए देहरादून से मसूरी, नैनबाग, डामटा, नौगांव, पुरोला, मोरी और नैटवाड़ का मोटर मार्ग पकड़ना पड़ता है। नैटवाड़ से कौरवों का क्षेत्र शुरू हो जाता है। यों तो मोटर मार्ग नैटवाड़ से सांकरी होते हुए तालुका तक बन गया है। परन्तु सांकरी तक ही मोटर मार्ग अच्छा है। कई पर्यटक सहारनपुर से विकासनगर, कालसी, यमुनापुल, नैनबाग, डामटा, पुरोला तथा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मोरी के मार्ग से भी इस क्षेत्र में पहुंचते हैं। बहुत से पर्यटक चकराता से पैदल चलकर इस क्षेत्र में पहुंचते हैं। तालुका से ओसला का पैदल मार्ग 12 कि० मी० का है। ओसला से 'हर की दून' मात्र 8 कि० मी० है।

'महाभारतकालीन' समाज के सम्बन्ध में अनेक मतभेद हैं। कौरव हों या पांडव—उनकी संस्कृति एक ही थी। उनके संस्कार एक ही कुल परम्परा में ढले थे। 'महाभारत' तो कौरवों-पांडवों की कथा है। पांडवों ने कौरवों को पराजित कर अपने अधिकार की रक्षा की थी। न्याय के पक्ष में भगवान कृष्ण भी थे। इसीलिए उन्होंने पांडवों का पक्ष लिया। अप्रत्यक्ष रूप में भगवान कृष्ण ही महाभारत की समस्त घटनाओं के मुख्य संचालक थे।

'महाभारत' युद्ध के बाद स्थिति बदल गई। पांडवों की तरह जीवनयापन करने वाले पांडव भक्त हो गये और कौरवों की तरह अपना कार्य करने वाले कौरवों के पक्षधर हो गये। पांडवों के ऊपर कौरवों ने अनेक अत्याचार किये थे। अत: उन्हें भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भटकना पड़ा। वे जहां-जहां गये उन्होंने अपने पराक्रम से उस क्षेत्र में अपना सिक्का जमाकर अपने वर्चस्व को स्थापित किया। यही कारण है कि भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पांडवों से सम्बन्धित कई कथाएं मिलती हैं। बल्कि कई संस्कृतियों को पांडवों ने अपने विशिष्ट व्यक्तित्व से प्रभावित किया। यही कारण है कि पांडवों का प्रभाव क्षेत्र—सम्पूर्ण भारत रहा। जबकि कौरव हस्तिनापुर के प्रभाव वाले क्षेत्रों तक ही सीमित रहे।

दोनों की संस्कृति एक थी। परन्तु दोनों की जीवन शैली अलग-अलग थी। इन्हीं शैलियों ने अपने-अपने प्रभाव क्षेत्रों का निर्माण किया। समय की गति के साथ समाज के विभिन्न क्षेत्रों में इन जीवन शैलियों का प्रभाव गहराता रहा। सामाजिक जीवन में भी परिवर्तन आते गये। फिर भी, कुछ अंचल विशेष तत्कालीन संस्कृतियों के संवाहक बनकर अपना अस्तित्व बनाये रहे। ऐसी ही विशिष्ट संस्कृतियों के क्षेत्र में अब तक हम आप विचरण करते रहे हैं। यह तो मात्र झलकियां थीं। यदि हम सचमुच महाभारतकालीन चरित्रनायक एवं नायिकाओं को सम्बन्धित क्षेत्रों की जानकारी करना चाहते हैं तो हिमाचल प्रदेश से गढ़वाल-कुमाऊं वाले क्षेत्र तक का गहरा अन्वेषण करना आवश्यक होगा। कई नये तथ्य प्रकाश में आयेंगे।

रंवाई (जौनपुर-बावर, रंवाई-जौनपुर और हर की दून-पंचगई वाला) क्षेत्र तो दर्पण की तरह साफ है। यहां कौरव-पांडवों से सम्बन्धित कई रोचक कथानक मिलते हैं। उस समय के ऐसे-ऐसे वीरों अथवा चरित्र नायकों की लोक कथाएं मिलती हैं जिनके अध्ययन से नई स्थापनाएं स्थापित हो सकती हैं। इस क्षेत्र की भाषा पर भी रोचक अध्ययन हो सकता है। यहां का ज्योतिष शास्त्र भी अपने ही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ढंग का अनूठा शास्त्र है। सबसे अधिक रोचक और आकर्षक है—यहां का अपना जीवन-दर्शन। लोकगीतों, लोकनृत्यगीतों एवं नीति सम्बन्धी छोटे-छोटे गीतों में यहां की विशिष्ट जीवन शैली एवं जीवन दर्शन की अद्‌भुत छटा मिल जाती है। इनके गहन अध्ययन से महाभारतकालीन जीवनदर्शन के नये सूत्र सामने आ सकेंगे। अतः 'रंवाई' का यह क्षेत्र महाभारतकालीन संस्कृति और समाज का ऐसा प्रतिबिम्ब है जिसमें तत्कालीन समाज के हर तरह के दृश्य स्पष्ट दिखाई देते हैं।

□□

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant